ISSN 0974-1100
रेफर्ड रिसर्च जर्नल

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ

A Social Science Research Journal

वर्ष 23 अंक 89 एवं 90 ▪ संयुक्तांक ▪ अप्रैल-सितम्बर, 2017

सम्पादक
डॉ.हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

PŪRVADEVĀ A Research Journal of Social Sciences

वर्ष 23 अंक 89 एवं 90 संयुक्तांक अप्रेल– सितम्बर, 2017

❒

सम्पादक

डॉ. हरिमोहन धवन

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाण भट्टमार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र) 456010

दूरभाष (0734) 2518737

E-mail : mpdsaujn@gmail.com

Website - www.mpdsa.org

पूर्वदेवा

सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग,नईदिल्ली द्वारा अनुमोदित - अनुक्रमांक 48433

परामर्श

डॉ. रामगोपाल सिंह

पूर्व आचार्य एवं साहित्यकार

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू

डॉ. रहमान अली

पूर्व आचार्य,प्राचीन भारतीय इतिहास, अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. लक्ष्मीनारायण जाटवा

पूर्व आचार्य, राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, पूना एवं से.नि. प्राचार्य, शास. महाविद्यालय, दमन

डॉ. जयप्रकाश कर्दम

वरिष्ठ साहित्यकार एवं सम्पादक, दलित साहित्य वार्षिकी, नईदिल्ली

सम्पादक मण्डल

डॉ. प्रेमलता चुटैल

आचार्य–हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. आर. के. अहिरवार

विभागाध्यक्ष–प्राचीन भारतीय इतिहास, अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. अरूण वर्मा

पूर्व आचार्य, हिन्दी,

शास. माधव कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन

डॉ. शैलेन्द्र पाराशर

पूर्व अध्यक्ष– डॉ. अम्बेडकर पीठ, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

डॉ. एच.एम. बरूआ

पूर्व आचार्य, समाजशास्त्र,

शास. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन

सम्पादक : डॉ. हरिमोहन धवन

सह–सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : पी. सी. बैरवा

© स्वात्वाधिकारी : मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी,

बाणभट्ट मार्ग, सेन्ट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन (म.प्र.)

इस अंक का मूल्य रूपये 150/–

वित्तीय सहयोग

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नईदिल्ली

सम्पादन व प्रकाशन सर्वथा अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

पूर्वदेवा में प्रकाशित लेख एवं उनमें व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार है.

सम्पादक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है.

पूर्वदेवा

म.प्र. दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

❐ अनुक्रम ❐

1.	भारतीय समाज के पतन व पराभव के कारण एक समाज वैज्ञानिक विवरण	डॉ. रामगोपाल सिंह	1
2.	महावीर स्वामी का भारतीय दर्शन में विशिष्ट योगदान	डॉ.मौसमी सोलंकी	31
3.	संस्थागत दलित पत्रकारिता पर शोध की आवश्यकता	डॉ. रूपचन्द गौतम	40
4.	भारतीय बौद्धदर्शन में सामाजिक वर्णश्रम व्यवस्था	डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलु	45
5.	सामाजिक वर्ण व्यवस्था एवं जातिभेद	डॉ. हेमलता चौहान	49
6.	बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नव बौद्धवाद	श्रीमती मीना परस्ते	53
7.	संचार प्रौद्योगिकी का समाज और संस्कृति पर प्रभाव	डॉ. अरूण वर्मा	57
8.	भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव : एक विश्लेषण	डॉ. वीरेन्द्र चावरे	62
9.	आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का जनजातीय समाज व संस्कृति पर प्रभाव	सुनीता बघेले	69
10.	आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी और ग्रामीण विकास	डॉ. श्रीमती वीणा सिंह	72
11.	शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका	डॉ. वी.पी. मीणा	76
12.	अशासकीय विद्यालय के विज्ञान विषय में अनुदेशनात्मक आव्यूह का उपलब्धि के स्वंदर्भ में प्रभाविता का अध्ययन	श्रीमती नलिनी शर्मा	83
13.	मानव जीवन में ज्योतिष का महत्व	अरविन्द खोत	89
14.	भारतीय संविधान की सामाजिक संरचना में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की भूमिका	डॉ. दत्तात्रय पालीवाल	92
15.	पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता	डॉ. हरिमोहन धवन	96
16.	पं. दीनदयाल उपाध्याय का सामाजिक समरसता संबंधी दृष्टिकोण	आचार्य शैलेन्द्र पाराशर	100

इस अंक के लेखक

डॉ.रामगोपाल सिंह – 1/7, शिवानी काम्पलेक्स, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.)

डॉ. मौसमी सोलंकी–शोधार्थी, दर्शनशास्त्र अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ.रूपचन्द गौतम– 228/9, मंडोली, नन्दनगिरी, दिल्ली–93, (उ.प्र.)

डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलू– पूर्व प्राचार्य, सेठी नगर, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. हेमलता चौहान–सहा.प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान शासकीय महाविद्यालय, बडनगर, जिला–उज्जैन (म.प्र.)

श्रीमती मीना परस्ते–शोधार्थी– दर्शनशास्त्र अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. अरूण वर्मा–पूर्व आचार्य–हिन्दी, 39, अलकापुरी, उदयन मार्ग, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. वीरेन्द्र चावरे–लेक्चरार – राजनीति विज्ञान अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

सुनीता बघेले–शोधार्थी , म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. श्रीमती वीणा सिंह– सहा.प्राध्यापक–रसायनशास्त्र, शासकीय कन्या महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)

डॉ. वी.पी. मीणा– सहा. प्राध्यापक–वाणिज्य, पं.बालकृष्ण शर्मा नवीन शास. महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)

श्रीमती नलिनी शर्मा खोत– शोधार्थी , सी–7/16, महाकाल वाणिज्य केन्द्र, नानाखेड़ा, उज्जैन (म.प्र.)

अरविन्द खोत– शोधार्थी , सी–7/16, महाकाल वाणिज्य केन्द्र, नानाखेड़ा, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. दत्तात्रय पालीवाल– सहायक शोध निदेशक, म.प्र. दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन (म.प्र.)

डॉ. हरिमोहन धवन–अध्यक्ष–म.प्र. दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन (म.प्र.)

आचार्य शैलेन्द्र पाराशर– ''नमन'' 64, विद्या नगर, सांवरे रोड़, उज्जैन (म.प्र.)

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 1–30 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

भारतीय समाज के पतन व पराभव के कारण– एक समाज वैज्ञानिक विवेचन

डॉ. रामगोपाल सिंह

उद्‌भव, उत्थान व पतन प्राकृतिक घटनायें हैं। ये आकस्मिक, अनायास या अकारण घटित नहीं होतीं। अपितु उद्विकास के किन्हीं सुनिश्चित नियमों से संचालित होती हैं। उद्‌भव के पश्चात आमतौर पर कोई वस्तु (चाहे वह भौतिक या अभौतिक हो) विकास या उत्थान की ओर बढ़ती है। किन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह सतत् विकास की ओर ही बढ़ती रहे। विकास के दौरान बीच में व्यतिक्रम भी उत्पन्न हो सकता है और वह पतन की ओर जा सकती है। कुछ समय पश्चात संभव है कि वह पुनः विकास की ओर बढ़े अथवा यह भी हो सकता है कि उच्चावचन (उतार–चढ़ाव) की इस प्रक्रिया से गुजरने के पश्चात उसका विकास अवरुद्ध हो जाए और वह पतन की ओर बढ़ते हुए विनाश को प्राप्त हो जाए। इसके बरक्स कोई वस्तु यदि विकास की ओर सतत् बढ़ती भी है तो भी एक चरम स्थिति तक पहुँचने के पश्चात न तो आगे उसका विकास होता है और न ही वह वहाँ सदा बनी रहती है। अपितु पतन व विनाश की ओर अग्रसर होती है। अतीत में भारतीय समाज व संस्कृति के साथ यही हुआ। यह बात अलग है कि पतन व पराभव को प्राप्त होने और बुरी तरह क्षत–विक्षत होने के बावजूद भी भारतीय समाज व संस्कृति विश्व के अन्य प्राचीन समाजों व संस्कृतियों की भांति विनिष्ट नहीं हुए, बल्कि अपना अस्तित्व बचाये रखने में कामयाब रहे।

किसी वस्तु का उत्थान और पतन अथवा विकास और विनाश आन्तरिक या बाह्य अथवा दोनों प्रकार के कारणों से हो सकता है। वैसे देखने में आता है कि किसी वस्तु

के विकास के जो कारण बताये जाते हैं वे आमतौर पर आन्तरिक होते हैं। जबकि विनाश के बताये जाने वाले कारण आमतौर पर बाह्य व सामयिक होते हैं। वैसे वस्तु के विनाश के ये बाह्य कारण हो सकते हैं कि उसके पतन के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हों। किन्तु सामान्यतया ये उसके पतन व विनाश के मूल कारण नहीं होते। ऐसा इसलिये कहा जा सकता है क्योंकि ये कारण तो प्रकृति में सामान्यतः पहले से ही विद्यमान रहते हैं किन्तु इनसे वस्तु को शायद ही कोई क्षति पहुँचती है। ये वस्तु को तभी कोई नुकसान पहुंचा पाते हैं जबकि वह आन्तरिक रूप से कमजोर होती है। यदि ऐसा नहीं है अर्थात यदि वस्तु आन्तरिक रूप से कमजोर नहीं है तो जैसा कि ऊपर कहा गया है, ये कारण वातावरण में भले ही बने रहें लेकिन इनसे वस्तु की सेहत पर शायद ही कोई असर पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि शरीर की प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है तो बाह्य रोगाणु उसे कोई क्षति नहीं पहुंचा पाते। लेकिन जब शरीर की आन्तरिक प्रतिरोधक क्षमता कमजोर होती है तो बाह्य रोगाणु उस पर हावी हो जाते हैं, जिससे शरीर धीरे–धीरे निःशक्त व कमजोर पड़ जाता है और अन्ततः विनाश को प्राप्त होता है। जिस तरह शरीर एक सिस्टम है उसी तरह समाज भी एक सिस्टम है और जो बात शरीर पर लागू होती है वह बहुत कुछ समाज पर भी लागू होती है। भारतीय समाज इसका कोई अपवाद नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय समाज के पतन के भले ही कई बाह्य कारण हों किंतु उसके पतन का मूल कारण भी आन्तरिक ही है क्योंकि जब तक कोई समाज आन्तरिक रूप से कमजोर नहीं होता, तब तक कोई बाह्य समाज उस पर अपना आधिपत्य कायम करने की बात तो दूर इस बारे में सोचने का साहस ही नहीं कर पाता और कोई समाज आन्तरिक रूप से कमजोर सामान्यतः आन्तरिक कारणों से ही होता है। यह बात हम आगे भारतीय समाज के पतन के कारणों की विवेचना के संदर्भ में उसकी संरचना सम्बन्धी त्रुटियों व विसंगतियों पर विचार करते समय देखेंगे।

भारतीयों के लिए जहाँ यह एक गौरव का विषय है कि सिंधु घाटी एवं वैदिक सभ्यता से लेकर बौद्धकालीन सभ्यता तक (3300 ई.पू.–184 ई.पू.) के दौरान करीब 3000 वर्षों से भी अधिक समय तक वे विश्व में सशक्त, समृद्ध, उन्नत व अग्रणी रहे। वहीं यह एक त्रासदीपूर्ण व शर्मनाक विषय है कि मध्यकाल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति (712–1947) तक के बीच करीब हजार–बारह सौ वर्ष की जितनी लम्बी अवधि तक वे

गुलाम रहे, उतनी लम्बी अवधि तक दुनिया की शायद ही कोई कौम गुलाम रही। इस तरह हम देखते हैं कि भारत के उत्थान और उन्नयन के इतिहास का लम्बा व गौरवपूर्ण होना जितना सच है, उसके अवसान और अवनयन के इतिहास का लम्बा और गौरवहीन होना भी कमोवेश उतना ही सच है। हालांकि भारत की अवनति और पतन की शुरुआत तो बौद्धधर्मी मौर्य साम्राज्य के पतन व पुश्यमित्र शुंग के सत्ता में आने (185 ई.पू.) के फलस्वरूप वैदिक धर्म के ब्राह्मण धर्म में रूपांतरण तथा भेदभावपूर्ण शास्त्रीय विधानों, विशिष्ट रूप से मनु के विधान के लागू होने के साथ ही शुरू हो गई थी किंतु इसके जमीनी दुष्परिणाम लगभग 900 साल बाद मोहम्मद बिन कासिम के हाथों सिंध के राजा दाहिर की पराजय और सिंध पर अरबों के आधिपत्य (712 ई.पू.) के रूप में सामने आई। सिंध के पतन के साथ भारतीयों की जो पराजय शुरू हुई वह आगे मोहम्मद गौरी के हाथों दिल्ली सम्राट पृथ्वीराज (1192) तथा अंग्रेजों के हाथों दिल्ली के संरक्षक मराठों (1803) की पराजय से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) तक थोड़े–बहुत अंतराल के साथ कमोवेश निरंतर चलती रही।

विश्व के एक सशक्त, समृद्ध, उन्नत व अग्रणी समाज का एक अवनत, अपक्षयित व पराधीन समाज में परिणत हो जाना कोई आकस्मिक, अनायास घटित होने वाली साधारण घटना नहीं हो सकती है। निश्चित रूप से पराजय के इस सिलसिले के लम्बे समय तक चलते रहने के पीछे कोई या कुछ ठोस व गंभीर कारण रहे होंगे। इसे जानने व समझने की किसी भी भारतीय के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होना बहुत स्वाभाविक है। ऐसा खासतौर पर तब जबकि हम एक नये भारत, एक सशक्त व उन्नत भारत के निर्माण के लिए प्राणपण से जुटे हैं। निःसंदेह विगत सात दशकों में हमने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अप्रत्याशित प्रगति की है और विज्ञान, तकनालॉजी तथा रक्षा एवं अन्तरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में नए कीर्तिमान भी स्थापित किये हैं। फिर भी, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राचीन समय में हम ज्ञान–विज्ञान, कला, साहित्य, धर्म, दर्शन सहित जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विश्व में अग्रणी रहे। फिर भी, आगे चलकर गुलाम हुए और लम्बे समय तक गुलाम रहे। एक उच्चतर समाज के किसी या किन्हीं कमतर समाज या समाजों से पराजित होने और लम्बे समय तक पराजित होते रहने के पीछे निश्चित रूप से उसकी अपनी कमजोरी ही उत्तरदायी रही होगी। इसीलिए हम इस सत्य से आँख नहीं मोड़ सकते कि जब तक हम अपनी आन्तरिक कमजोरियों या आन्तरिक त्रुटियाँ का

पता लगाकर उन्हें पूरी तौर पर विनिष्ट नहीं करते, तब तक हमारे पास इस बात की कोई प्रत्याभूति (गारंटी) नहीं है कि हम अपनी प्रगति को सुरक्षित रख पायेंगे। इस तथ्य के मद्देनजर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत लेख इस दिशा में किया गया एक वस्तुनिष्ठ तटस्थ प्रयास है।

भारतीय समाज के पतन व पराभव के कारण

अतीत में भारतीय समाज व भारतीयों के पतन व पराभव के कई कारण बताये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि भारतीय इसलिये हारे क्योंकि वे शारीरिक रूप से कमजोर थे। साथ ही, उनके पास आक्रमणकारियों की तुलना में न तो बेहतर हथियार थे, न बेहतर सवारी थी और न ही बेहतर युद्ध कौशल था। कुछ लोग मानते हैं कि शाकाहारी होने की वजह से भारतीय आक्रमक, हिंसक व क्रूर प्रकृति के नहीं थे जबकि अरब व अन्य आक्रमणकारी मांसाहारी होने के कारण हिंसक, लड़ाकू व क्रूर प्रकृति के थे। अहिंसक होने की वजह से भारतीय शांतिप्रिय व संतोषी थे। इनमें दूसरों को लूटने, गुलाम बनाने, उन पर शासन व अत्याचार करने, उनकी महिलाओं को रखैल बनाने और उनकी संपत्ति पर ऐश करने की प्रवृत्ति नहीं थी। यही नहीं अपितु गैर आक्रामक होने के कारण ये अपने शत्रु की पहचान कर इसके पहले कि वह इन पर हमला करे, उसे नष्ट करने की कोशिश नहीं करते थे। इसके अलावा शांतिप्रिय होने के कारण जब तक कोई इन पर हमला नहीं करता था, ये युद्ध नहीं करते थे और हमला होने की स्थिति में भी ये हमलावर को उसके घर तक खदेड़कर उसे पूरी तरह नष्ट नाबूत नहीं करते थे, ताकि उसकी दुगर्ति देखकर न तो वह और न ही कोई और उन पर हमला करने का दुस्साहस कर सके।

भारतीयों के गैर आक्रामक होने के सम्बन्ध में यह कहना सही है कि वे गैर आक्रामक इसलिये नहीं थे क्योंकि वे कमजोर या भीरू थे बल्कि वे इसलिये गैर आक्रामक थे क्योंकि उन्हें दूसरों पर आक्रमण कर उनसे कुछ छीनने की जरूरत नहीं थी। उनके पास वो सब कुछ था जो उन्हें चाहिए था क्योंकि भारत प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण तथा आर्थिक रूप से सम्पन्न व समृद्ध था। ऐसे में अगर कोई उनके यहाँ लूटपाट करने आता था तो उसे वे मारकर भगा देते थे और अगर कोई रह भी जाता था तो वैदिक व बौद्धकालीन समाज व संस्कृतियाँ ग्रहणशील व आत्मसाती होने से उसे आसानी से अपने में मिला लेती थीं। कदाचित यह मानते हुए कि जहां फल लगे होते हैं वहां

पत्थर मारने वाले आते ही हैं, भारतीयों ने पत्थर मारने वालों के घर में घुसकर उन्हें नेस्त नाबूत करने की परवाह नहीं की। वस्तुस्थिति जो भी हो लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अतिशय शांतिप्रियता व अहिंसात्मकता जो व्यक्ति को इतनी अधिक शांतिप्रिय व अहिंसक बना दे कि उसमें प्रतिहिंसा व बदले की भावना ही मर जाये और वह आक्रमणकारी व अत्याचारी को उसी की भाषा में उसके दुःसाहस व दुष्कर्मों का फल न चखाये, अच्छा नहीं है। **हमारा इतिहास तो हमें यही बताता है कि अतिशय शांतिप्रियता एवं अतिशत अहिंसात्मकता तथा गैर आक्रामकता एवं रक्षात्मकता की हमारी नीति ही अंततः हमारे लिए आत्मघाती सिद्ध हुई।**

भारतीय समाज के पतन व पराभव के कुछ कारणों के बारे में हमने चर्चा की। इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए हम इसके कुछ अन्य कारणों पर विचार करेंगे और यह जानने की कोशिश करेंगे कि क्या इन कारणों में या इनके अलावा कोई एक केन्द्रीय या मूल कारण है, जिससे कमोवेश अन्य सभी कारणों की जड़ें किसी न किसी रूप में जुड़ी हैं।

सांसारिकता से विरक्ति का मनोविज्ञान

अगर यह कहा जाए कि अतीत में भारतीयों के पतन व पराभव के लिए उनमें अन्तर्मुखता, असांसारिकता तथा निवृत्ति एवं विरक्तिमूलक मानसिकता बहुत हद तक उत्तरदायी रही है तो कदाचित गलत नहीं होगा। दरअसल, प्राचीन काल से ही भारतीय इहलोकपरक कम परलोकपरक अधिक हैं। भौतिक उपलब्धि को अपने जीवन में उन्होंने कभी अधिक महत्व नहीं दिया। वे पारलौकिक सुख के आकांक्षी होते हैं। किन्तु पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिये भौतिक संसाधनों या सांसारिकता की नहीं बल्कि आध्यात्मिक साधना की जरूरत पड़ती है। आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य आत्मज्ञान प्राप्त करना होता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति के साथ व्यक्ति की आत्मा माया–मोह रूपी सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा में विलीन हो जाती है। इस प्रकार व्यक्ति को जन्म–मृत्यु के बन्धन से हमेशा के लिये छुटकारा मिल जाता है और वह शाश्वत सुख को प्राप्त होता है। यही भारतीयों के जीवन का चरम लक्ष्य है। शाश्वत सुख की कामना भारतीय परम्परा में चाहे मोक्ष के रूप में अथवा निवार्ण या कैवल्य के रूप में की गई हो, किन्तु इसकी प्राप्ति का कोई भी मार्ग आसक्तिमुखी नहीं बल्कि विरक्तिमुखी ही होता है क्योंकि आध्यात्मिक साधना, जो जैसा कि पूर्व में कहा गया है पारलौकिक या आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति के लिए जरूरी है, वस्तुतः, निवृत्ति की साधना है। यह सांसारिकता पर नहीं अपितु असांसारिकता पर जोर देती है।

निवृत्ति की मानसिकता ने भारतीयों की भौतिक प्रगति को अवरुद्ध किया। अपनी निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति के कारण वे दुनिया से अलग अपने में ही जीते रहे और दुनिया बहुत आगे निकल गई। लिहाजा बाहरी लोगों से जब टक्कर हुई तो उनके सामने घुटने टेकने के अलावा इनके पास कोई विकल्प नहीं था। दरअसल, हुआ यह कि निवृत्ति की मानसिकता के चलते भारतीयों में अपनी कामनाओं को सीमित रखने, वंचित होने की अनुभूति के प्रति सहनशील होने, समाज, सरकार या किसी अन्य से अधिक अपेक्षा नहीं रखने, जितना मिलता है उसी में संतोष करने, कम अवसरों में भी सन्तुष्ट रहने, समस्याओं और चुनौतियों से टकराने की जगह उन्हें टालते रहने, मतभेदों, अन्तर्विरोधों एवं विरोधाभासों के निराकरण के लिए प्रयत्न करने की जगह उनके साथ जीने तथा अन्याय, अत्याचार व अपमान के प्रति घृणा व बदले की भावना रखने की जगह न केवल उनके प्रति उदात्त व सहनशील होने, अपितु उन्हें बर्दाश्त करने की प्रवृत्ति विकसित हुई (कोठारी, 2010)। जिसकी वजह से वे शनैःशनैः अधिकाधिक अन्तर्मुखी, आसांसारिक, यथास्थितिवादी, संतोषी, सहनशील व गैर आक्रामक होते गये। परिणामस्वरूप, वे दुनिया को जीतने की जगह अपने आपको जीतने, दुनिया पर नियंत्रण व शासन करने की जगह अपने पर नियंत्रण व शासन करने में लगे रहे। अन्तर्मुखी व आत्मकेन्द्रित होने की वजह से वे बाहरी दुनिया के प्रति सचेत नहीं रहे जिससे बाहरी दुनिया के लोगों को उन पर कब्जा जमाने का मौका मिल गया।

अपनी विरक्तिमूलक अन्तर्मुखी प्रवृत्ति तथा मोक्ष या निर्वाणपरक जीवनपद्धति के चलते भारतीयों ने अपने में न तो सामूहिकता व संगठनात्मकता के विकास पर जोर दिया और न ही युद्ध कौशल में प्रवीणता हासिल करने एवं सैन्य संगठन मजबूत करने पर ध्यान दिया। इसके पलट दुनिया के अन्य मुल्कों के लोग अपने बाहुबल, धनबल एवं सैन्यबल को मजबूत करने और इनके माध्यम से अपने लिए अधिकाधिक भौतिक सुख समृद्धि जुगाड़ने में लगे रहे। आसक्तिमूलक व इहलोकपरक जीवन पद्धति ने गैरभारतीयों में विस्तारवादी व साम्राज्यवादी मानसिकता को जन्म दिया। ऐसे में साम्राज्यवादी मानसिकता के वशीभूत हो इन बाहुवल व धनबलवादियों ने जब भारत की ओर रुख किया तो भारतीय अपनी अहिंसक मानसिकता, गैरसामूहिकता तथा सहिष्णुतापरक धार्मिकता के कारण संगठित रूप से उनका मुकाबला नहीं कर सके और पराभव व पतन को प्राप्त हुए।

सामान्य भारतीय मानसिकता के बारे में की गई उपुर्यक्त चर्चा के आधार पर संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अति आध्यात्मिकता ने भारतीयों में एक तो अन्तर्मुखता तथा आत्ममुक्ति एवं आत्मज्ञान की प्राप्ति की लालसा को बढ़ावा दिया और दूसरे, सांसारिक उपलब्धि के प्रति व्यर्थता का बोध एवं संसार के प्रति विरक्ति का भाव पैदा किया, जिससे उनमें सांसारिकता कमजोर हुई। चूँकि सासांरिकता के प्रति उनमें कोई विशेष चाव नहीं रहा तथा ऐहिक उपलब्धियाँ उन्हें व्यर्थ प्रतीत होने लगीं लिहाजा उनके लिए जद्दोजहद व संघर्ष करने का उनके लिए कोई अर्थ नहीं रहा। ऊपर से विरक्ति भाव ने शनैःशनैः उन्हें मान–अपमान, यश–अपयश व जय–पराजय के प्रति निर्विकार बना दिया। इनके अतिरिक्त ऐहिक उपलब्धियों के प्रति व्यर्थता के बोध ने उनमें प्रत्याक्रमण, प्रतिहिंसा, प्रतिरोध एवं संघर्ष की मानसिकता को कुन्द किया। कुल मिलाकर इन सबका दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीयों में सामूहिकता का बोध धीरे–धीरे कमजोर पड़ता गया जिससे उनमें सामूहिकता एवं सामूहिक एकता की भावना कम होती गई और सामूहिक प्रयत्न एवं संगठित प्रयास शिथिल पड़ते गये। नतीजतन भारतीय समाज अवनत व कमजोर हो गया और भारतीयों को पराजित होना पड़ा।

राजाओं की स्वेच्छाचारिता तथा राजनैतिक एकता एवं संगठित राज्य शक्ति का अभाव

भारतीयों में राजनैतिक जागरूकता, एकता तथा एक मजबूत राजनैतिक शक्ति का अभाव अतीत में उनकी अवनति एवं पतन का एक बड़ा कारण रहा। दरअसल, भारत सिंधु घाटी सभ्यता के समय (3300 ई.पू.) से ही एक संस्कृति प्रधान न कि राजनीतिप्रधान देश रहा है। भारतीय परम्परा की प्रकृति अराजनीतिक रही है। यहाँ राज्य बनते–बिगड़ते रहे। सत्तायें आती–जाती रहीं। लेकिन समाज व संस्कृति कमोवेश पूरे देश में एक सी रही (कोठारी, 2010)। हालांकि इतिहास में भले ही भारत एक देश रहा और यहां समाज व संस्कृति कमोवेश एक रही, फिर भी, कतिपय अपवादों को छोड़कर यह कई छोटे–बड़े राज्यों, जिनका शासन व विधान कमोवेश अपना होता था, में बँटा रहा। छोटे–छोटे राज्यों में बँटे रहने से भारत में एक समेकित राजनीतिक अस्मिता एवं वृहद राजनीतिक संगठन का आमतौर पर अभाव रहा।

भारत में केवल सामाजिक, सांस्कृतिक संगठन की प्रकृति ही बहुलवादी नहीं थी अपितु पूरा राजनीतिक व प्रशासनिक प्रक्रम भी बहुलवाद पर आधारित था। यहाँ

छोटे–बड़े अधिकांश कार्य और आपसी विवाद परिवार, गोत्र, जाति, गांव एवं क्षेत्र स्तर पर ही निपटा लिये जाते थे। इसलिये, आम जीवन में वृहद स्तर पर संगठन की यहाँ बहुत जरूरत महसूस नहीं की जाती थी। परिणामस्वरूप, वृहद स्तर पर क्या राजनैतिक उलटफेर हो रहा है इसमें आमजन की न तो कोई दिलचस्पी होती थी और न ही इससे उन्हें कोई फर्क पड़ता था (कोठारी, 2010)। कुल मिलाकर स्थिति यह थी कि "कोउ नृप होई हमहिं का हानी"। इससे कम से कम यह बात तो अवश्य स्पष्ट होती है कि भारतीयों में राजनीतिक जागरूकता का बहुत कुछ अभाव था। इसका एक प्रमुख कारण जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, यह था कि आम भारतीयों में लौकिक सुख एवं समृद्धि के प्रति कोई खास आकर्षण नहीं था। दूसरा, यह कि भारत में समाज और राज्य तथा सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में बहुत कुछ अलगाव था। यहां समाज के एक बहुत छोटे से भाग, राजनीतिक अभिजन को छोड़कर शेष वृहत्तर समाज को राजनीति से कोई खास लेना–देना नहीं था।

भारतीयों की पराजय का एक अन्य बड़ा कारण यह था कि अपवाद स्वरूप किसी या किन्हीं अवसरों को छोड़कर भारत में शायद ही कभी कोई एक संगठित राज्य सत्ता रही। यहाँ छोटे–छोटे अनेकों राज्य थे जो छोटे–मोटे स्वार्थों को लेकर हमेशा आपस में लड़ते रहते थे। विशेष रूप से मध्यकालीन राजाओं में निजी अहंकार, निहित स्वार्थ तथा ईर्ष्या–द्वेष एवं पारस्परिक विरोध के चलते एकता का नितांत अभाव था। इसके अलावा कुछ सीमित राजनीतिक अभिजनों को छोड़कर आम जनता को उनके बनने–बिगड़ने या हारने जीतने से कोई लेना–देना नहीं था। ऊपर से जाति व्यवस्था के चलते राज्य संचालन एवं राज्य की सुरक्षा का दायित्व परम्परात्मक रूप से एक बहुत छोटे से वर्ग क्षत्रिय तक सीमित था और समाज का अधिसंख्य भाग शास्त्रीय विधान के तहत शिक्षा व शस्त्र ज्ञान से पूरी तौर पर वंचित था जिसकी वजह से जनसामान्य एवं राज्य के बीच न केवल दूरी बल्कि विलगाव पैदा हो गया था जो राज्यों की कमजोरी का एक बहुत बड़ा कारण था। तात्पर्य यह है कि आम जनता से कटाव तथा आपसी लड़ाई–झगड़े के कारण छोटे–छोटे राज्य अपने आप में बहुत कमजोर हो गये थे। इन परस्पर युद्धरत छोटे–छोटे राज्यों में बँटे होने की वजह से देश बहुत कमजोर हो गया था।

बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा कर पाना अकेले किसी एक छोटे राज्य के लिए बहुत मुश्किल होता है। ऐसे में बाह्य आक्रमण के विरुद्ध देश की रक्षा के लिए जरूरत

इस बात की थी कि देश के परस्पर युद्धरत राज्यों के राजा अपने मतभेदों को भुलाकर बाह्य आक्रमणकारी का एकजुट होकर सामना करें। किन्तु इतिहास गवाह है कि मिथ्या अहंकार, निजी स्वार्थ तथा पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष के चलते राजाओं में एकता स्थापित नहीं हो पाई। बरक्स कई अवसरों पर तो मध्यकालीन राजाओं ने अपनों का साथ देने की जगह अपनों की बर्बादी के लिए शत्रु का साथ देने से भी परहेज नहीं किया। एकता के अभाव तथा आपसी विद्वेष, विखंडन एवं अलगाव के कारण भारतीय बहुत कमजोर हो गये थे। ऐसे में उनकी आपसी फूट कमजोरी को भांपते हुए बाहरी ताकतों ने जब उन पर हमला किया तो युद्ध में वे उनका मुकाबला नहीं कर सके और पराजित हुए। इस सम्बन्ध में रामधारी सिंह दिनकर (2013:229) का यह कहना बहुत सही है कि आदमी कमजोर पहले होता है, पराजय उसकी बाद में होती है। देश की एकता पहले टूटती है, दासता उस पर बाद में आती है।

दरअसल, गड़बड़ यह हुई कि मध्यकालीन राजाओं ने राज्य को निजी सम्पत्ति समझ लिया। वे यह भूल गये कि राज्य और राजा स्वयं उद्भूत नहीं हुए हैं बल्कि मानव सभ्यता के विकास के एक स्तर पर एक व्यवस्था के तहत समाज द्वारा बनाये गये हैं। निजी संपत्ति का दायरा तो आमतौर पर निजी जीवन तक ही सीमित होता है। सामाजिक जीवन से सम्बन्धित सभी चीजें वस्तुतः समाज की, न कि व्यक्ति की होती हैं। व्यक्ति तो व्यवस्था के तहत मात्र उनका संरक्षक होता है, स्वामी नहीं। लेकिन सत्ता के मद में चूर उस दौर के हमारे राजाओं ने राज्य सत्ता को निजी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बना लिया। वे यह भूल गये कि महत्वाकांक्षायें किसी एक व्यक्ति की बपौती नहीं होतीं और न ही अहंकार किसी एक व्यक्ति तक सीमित होता है। अहंकार, मिथ्याभिमान और महत्वाकांक्षाओं के कारण राजा जहां अपनी जनता से शनैःशनैः दूर होते गये, वहीं दूसरे राजाओं के साथ संघर्षरत भी हो गये। यह एक लोकमान्यता है, जो बहुत कुछ सही भी है कि जिस घर में फूट, अलगाव व आपसी विरोध के चलते लड़ाई–झगड़े होते रहते हैं वहां बाहर वालों की दाल गलने की संभावना काफी बढ़ जाती है। इसी प्रकार, अगर किसी मुल्क में लोगों के बीच आपसी विरोध और लड़ाई झगड़ों के चलते एकता टूटती है तो उसमें दासता को आने से रोक पाना कठिन होता है। मध्यकालीन दौर में भारत की बहुत कुछ यही स्थिति थी। दरअसल, बात यह हुई कि शास्त्रकारों विशेष रूप से उत्तर बौद्धकालीन शास्त्रकारों ने निहित स्वार्थों के वशीभूत

होकर स्वयं को भूदेवता तथा राजा को बहुत कुछ ईश्वर के लौकिक प्रतिनिधि के रूप में स्थापित कर दिया, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण कर्मकांडी और राजा स्वेच्छाचारी बन गये। जिसकी वजह से मध्यकालीन राजाओं पर वैदिक व उत्तर वैदिक काल की भांति धर्म व समाज का अंकुश नहीं रह गया। यह एक लोकविदित तथ्य है कि सत्ता जब स्वेच्छाचारी हो जाती है तो अहंकारग्रस्त और दायित्वहीन हो जाती है। अहंकार सत्ता को अंधा बना देता है और अंधे को अच्छाई और बुराई में फर्क दिखाई नहीं देता। उसकी इस कमजोरी को भांपकर बुराई उसे चारों ओर से घेर लेती है और एक दिन उसे गड्ढे में गिराकर उसका राजपाट तहस–नहस कर देती है। त्रेतायुग में लंकाधिपति रावण के साथ यही हुआ। मध्ययुग में दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज के साथ भी यही हुआ। नतीजतन लंका विध्वंस हो गई। दिल्ली पर मुस्लिम सल्तनत स्थापित हो गई और भारत गुलाम हो गया। दरअसल, ब्राह्मण शास्त्रकारों विशेष रूप से मनु ने शास्त्रीय विधान के माध्यम से शेष जातियों को पौरुष विहीन बना दिया और स्वयं कर्मकांडी बन गये। कर्मकांडी बन जाने के कारण वे पूरी तौर पर तेजविहीन हो गये। इसीलिये क्षत्रिय राजाओं की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए उनमें कोई परशुराम या चाणक्य पैदा नहीं हो सका। नतीजतन, राजाओं के पतन और उनके पतन के साथ भारत और भारतीयों के पतन व पराभव को रोक पाना संभव नहीं हो सका। चूंकि पराधीनता के लंबे दौर में व्यवस्था एवं विधान में परिवर्तन लाया जाना संभव नहीं हो पाया, इसलिये भारतीयों को लम्बे समय तक दासता झेलने को विवश होना पड़ा।

सामाजिक संरचना का त्रुटिपूर्ण एवं अन्यायपरक होना

किसी समाज के पतन व पराभव के यूँ तो तत्कालीन, सामयिक व दीर्घकालीन बहुत से कारण हो सकते हैं, किन्तु यदि कोई समाज इतिहास में लम्बे समय तक बार–बार पराभूत होता रहा हो तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसकी संरचना दोषपूर्ण व अन्यायग्रस्त होगी और उसमें आन्तरिक प्रतिरोध कमजोर होगा, जिसकी वजह से उसमें आन्तरिक सुधार और न्याय की पुनर्स्थापना की गुंजाइश नहीं होगी। न्याय चूंकि समाज की बुनियाद है इसीलिये न्याय के अभाव में समाज की बुनियाद कमजोर होगी। बुनियाद के कमजोर होने पर समाज मजबूत नहीं हो सकता। किंतु समाज में न्याय का अभाव, एकता का अभाव, संगठन का अभाव आमतौर पर तभी होता है जबकि उसकी संरचना में बुनियादी त्रुटियाँ हों। ऐसे में जब तक इन बुनियादी त्रुटियों

और इन त्रुटियों के पीछे कार्यरत कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर नहीं किया जाता तब तक समाज की उन्नति व विकास की उम्मीद नहीं की जा सकती।

दरअसल, समाज मनुष्य की एक अपरिहार्य आवश्यकता है। समाज के अभाव में मनुष्य के लिए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तो दूर, अपने अस्तित्व की रक्षा कर पाना भी मुश्किल होता है। इस बात से शायद ही इंकार किया जा सकता है कि व्यक्ति को धर्म, राजनीति, कला और विज्ञान आदि की आवश्यकता हो या न हो किन्तु समाज की आवश्यकता तो होती ही है। क्योंकि मनुष्य मूल रूप से एक सामाजिक प्राणी है। समाज मूल है और समाज की संरचना, आधार संरचना है, जिस पर मानव जीवन के आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि पक्षों से सम्बन्धित अधिसंरचनायें व्यवस्थित होती हैं और जिससे ही जीवन शक्ति ग्रहण करती है। ऐसा इसलिये क्योंकि समाज से ही ये सभी आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक संगठन व संस्थायें विकसित हुई हैं। सामाजिक संरचना को आधार संरचना मानने का एक अन्य प्रमुख कारण यह है कि सामान्यतया सामाजिक संरचना द्वारा निर्धारित सीमा के भीतर ही आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक आदि संरचनायें अपना कार्य करती हैं। सामाजिक सरंचना द्वारा निर्धारित सीमा को दरकिनार अथवा पार कर आगे बढ़ पाना अन्य संरचनाओं के लिए कठिन होता है। उदाहरण के लिए, सामाजिक संरचना यदि खुली होती है, तो व्यक्ति व समूह के लिए अपनी व्यवसायिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक व धार्मिक आदि गतिविधियों को संचालित करने और आगे बढ़ने की पूरी छूट होती है। यदि वह बंद होती है तो इनके लिए सीमा को पार कर आगे बढ़ पाना संभव नहीं होता है।

किसी समाज का उत्थान और पतन मूलरूप से उसकी संरचना की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। यदि समाज की संरचना त्रुटिरहित व गुणवत्तापूर्ण है तो वह संगठित, मजबूत व उन्नत होगा और यदि समाज अवनत व कमजोर हुआ तो उसके पतन व पराभव को रोक पाना संभव नहीं होगा। भारतीय समाज के संदर्भ में उपर्युक्त प्रस्थापना का परीक्षण उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के तहत किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अगर किसी समाज की संरचना मजबूत है किंतु किसी कारण से उसका कोई अंग व्याधिग्रस्त हो जाता है तो इसके पहले कि व्याधिग्रस्त अंग अपने रोगाणु संक्रमित कर समाज की संरचना को व्याधिग्रस्त करे, सामाजिक संरचना या तो व्याधिग्रस्त अंग के रोगाणुओं को नष्ट कर उसे व्याधिमुक्त कर देती है या संक्रमित

अंग का विकल्प खड़ा कर उसकी क्षतिपूर्ति कर देती है। साथ ही, इस दौरान अगर उसे कोई नुकसान हुआ या क्षति पहुंची तो वह उसे झेल लेती है। किंतु जब किसी समाज के किसी व्याधिग्रस्त अंग के रोगाणु इतने सशक्त हो जाते हैं कि वे उस अंग के साथ समाज को प्रदूषित कर उसकी संरचना में विकार पैदा कर देते हैं तो समाज कमजोर हो जाता है और देर–सबेर उसका विनाश हो जाता है। और अगर समाज का विनाश होता है तो उस अंग जिसने किन्हीं निहित स्वार्थों के चलते समाज में रोगाणु व विकार पैदा किये, का भी विनाश हो जाता है। अगर स्मृतिकालीन पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए मध्यकाल की घटनाओं का तटस्थ रूप से विश्लेषण किया जाए तो मध्यकालीन भारत में हमें बहुत कुछ यही स्थिति देखने को मिलेगी। वैदिक काल से लेकर बौद्धकाल तक सामाजिक संरचना बहुत कुछ वर्ण आधारित खुली व पारगम्य थी। उसमें सामाजिक शक्तियों (ज्ञान, बल या सत्ता, धन एवं श्रम) का प्रवाह बिना किसी रूकावट के निर्बाध रूप से होता था। न केवल समाज के भीतर अपितु समाज के बाहर भी व्यक्तियों व समूहों अथवा समाजों व संस्कृतियों के साथ आदान–प्रदान सहज व स्वाभाविक रूप से होता था। लोगों की सोच व कार्य करने का दायरा भी क्षेत्र, राज्य या राष्ट्र की सीमाओं तक सीमित न होकर वैश्विक था। वर्णों के बीच ऊँच–नीच व भेद नहीं था। तब भारतीय समाज उन्नत व मजबूत था।

उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मणों द्वारा वर्णों के बीच खानेबन्दी व भेदभाव पैदा करने की कोशिश की गई। किंतु विश्वामित्र व आगे चलकर विशेष रूप से महावीर एवं बुद्ध के नेतृत्व में इसके विरुद्ध सशक्त आंतरिक प्रतिरोध के चलते ऐसा हो नहीं पाया। लेकिन जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि बौद्ध धर्म के पैरोकार मौर्य साम्राज्य के पतन और ब्राह्मण धर्म के परिपोषक शुंग साम्राज्य के उत्थान के साथ स्मृतिकालीन शास्त्रकारों विशेष रूप से मनु द्वारा रचित विधान के तहत अन्तर्विवाह, अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह तथा अल्पायु में कन्या विवाह सम्बन्धी नियमों को कठोरतापूर्वक लागू किया गया जिसके फलस्वरूप समाज शनैःशनैः चार खुले एवं पारगम्य वर्णों की जगह चार हजार बंद एवं अपारगम्य जातियों में बँट गया।

वर्ण संरचना के जाति संरचना में रूपांतरण के दौर में केवल समाज का विखंडन ही नहीं हुआ, अपितु विखंडित भागों में शुद्धता–अशुद्धता के आधार पर उच्च व निम्न के रूप में श्रेणीकरण तथा श्रेणियों के बीच अधिकार एवं कर्तव्य का भेदभावपूर्ण विभाजन भी

हुआ। दूसरे शब्दों में, वैदिक एवं बौद्धकालीन वर्ण संरचना के बरक्स स्मृतिकालीन एवं मध्यकालीन जाति संरचना के तहत समाज में स्वतंत्रता, समानता तथा सामाजिक शक्तियों का संचरण बेखटक एवं निर्बाध होने की जगह श्रेणीबद्ध हो गया। परिणामस्वरूप, समाज में व्यक्ति अब अपनी योग्यता, गुण व कार्य संपादन के आधार पर नहीं बल्कि जन्मगत श्रेणी के आधार पर जाना–जाने लगा और उसी के आधार पर समाज में उसकी स्थिति का निर्धारण तथा उसके अधिकार एवं कर्तव्य का सुनिश्चयन होने लगा। जातिगत संरचना के तहत असमानता, भेदभाव व अन्याय के चलते जातियों के बीच ईर्ष्या, द्वैष एवं विरोध का भाव पैदा हुआ। जिससे सामाजिक सौहार्द्र में कमी आई। सामाजिक समरसता व एकता कमजोर हुई। सामाजिक विकास अवरुद्ध हुआ। परिणामस्वरूप, समाज अपक्षयन ओर विघटन का शिकार हो पतन को प्राप्त हुआ।

ऐसा लगता है कि भेदभावपूर्ण विधान बनाते समय ही शास्त्रकारों को इस बात का आभास हो गया था कि विधान और इस पर आधारित भेदभावपूर्ण सामाजिक संरचना के विरुद्ध पीड़ित वर्गों द्वारा सशक्त आंतरिक विरोध हो सकता है। अतः उसे रोकने के लिए उन्होंने विधान के तहत ही दो काम किये। एक तो यह कि महिला शूद्र एवं अतिशूद्र सहित समाज के बहुसंख्य भाग को विद्या, शस्त्र व सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर पूर्णतः शक्तिहीन कर दिया ताकि वे प्रतिरोध करने की स्थिति में ही नहीं रहें। दूसरे यह कि समाज में अवसर, अधिकार एवं प्रतिष्ठा का विभाजन अधिकार सम्पन्न एवं अधिकारविहीन के रूप में दो वर्गों में न करके श्रेणीक्रम में किया ताकि विभाजन की इस व्यवस्था के विरुद्ध वंचित एवं पीड़ित वर्ग एकजुट न हो सकें।

समाज में व्यक्तियों व समूहों की स्थिति, अधिकार एवं कर्तव्य के श्रेणीक्रम विभाजन व संस्तरण की ब्राह्मणवादी व्यवस्था के तहत सबसे ऊपर व सबसे नीचे की जातियों को छोड़कर बीच की हर जाति किसी (या किन्हीं) जाति (यों) के नीचे और किसी (या किन्हीं) जाति (यों) के ऊपर होती है, जिससे (या जिनसे) जो जाति ऊपर होती है उससे (या उनसे), न केवल उसकी स्थिति ऊँची होती है बल्कि उसके अधिकार भी अधिक होते हैं। अतः ब्राह्मण शास्त्रकारों द्वारा आरोपित इस श्रेणीक्रम संस्तरण की व्यवस्था की वजह से भारतीय समाज में किसी शक्ति–संपन्न जाति के विरुद्ध उससे कमतर शक्तिवाली जाति के साथ श्रेणीक्रम में अन्य कमतर शक्ति वाली जाति (या जातियाँ) क्रांतिकारी संघर्ष के लिए एकजुट नहीं हो पाईं। ऐसा इसलिये संभव नहीं हो

पाया क्योंकि अंतर्विवाह तथा सामाजिक स्थिति, अधिकार एवं सुविधाओं में असामानता के आधार पर वे खुद श्रेणीक्रम में बंटी हुई थी। अतः हम देखते हैं कि भेदभावपूर्ण विधान के तहत श्रेणीबद्ध असमानता पर आधारित स्मृतिकालीन समाज व्यवस्था के चलते संरचना में निहित अन्याय व भेदभाव सम्बन्धी विसंगतियों को आंतरिक पहल के माध्यम से दूर किया जाना संभव नहीं हो पाया। ऊपर से वर्णश्रम, धर्म–कर्म एवं पुनर्जन्म सम्बन्धी वैचारिकी के विकास के माध्यम से शास्त्रकारों ने वंचित लोगों को यह विश्वास दिला दिया कि यह उनकी नियति है। इस जन्म में अपने लिये निर्धारित कर्म को वे जितने अच्छेढंग से पूरा करेंगे अगले जन्म में उनकी स्थिति उतनी ही अच्छी होगी। अतः अगले जन्म में बेहतर परिणाम की प्राप्ति के भरोसे लोग आंख–मूंदकर अपने लिये निर्धारित कर्म को निष्ठापूर्वक सम्पन्न करते रहे। परिणामस्वरूप, वर्तमान जिंदगी में अपनी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए वैचारिकी व व्यवस्था में परिवर्तन या सामाजिक क्रांति के लिए संघर्ष करने की जगह वे यथास्थितिवादी बने रहे। सामाजिक क्रांति के अभाव में समाज में आर्थिक व राजनीतिक बदलाव भी नहीं हो पाया। अन्याय एवं भेदभावपूर्ण शास्त्रीय विधान तथा वर्णाश्रम धर्म–कर्म एवं पुनर्जन्म पर आधारित वैचारिकी के चलते कमजोर आंतरिक प्रतिरोध के कारण जब अन्याय व भेदभावग्रस्त भारतीय समाज अपने को न्यायपूर्ण व सशक्त नहीं बना पाया तो उसकी इस कमजोरी तथा जातिगत विद्वेष एवं फूट का फायदा उठाते हुए, अरब, अफगान व अन्य बाह्य समाज उस पर अपना आधिपत्य कायम करने में कामयाब हो गये।

अतीत में विशेष रूप से स्मृतिकाल एवं इसके बाद के दौर में जाति आधारित संरचना के चलते आंतरिक आदान–प्रदान सहज व निर्बाध नहीं हो पाया जिसकी वजह से लोगों के बीच पारस्परिक समझ व समरसता में कमी आई। साथ ही, कर्मकांड प्रधान धार्मिकता एवं निहित स्वार्थों से प्रेरित पुरोहिताई के चलते समाज में संकुचित परंपराओं का विकास हुआ जिसकी वजह से बाह्य समाज के साथ भी भारतीयों का आदान–प्रदान शनैःशनैः असहज होता गया और भारतीय बाहरी दुनिया से धीरे–धीरे कटते गये। भारतीयों ने अपने दरवाजे, खिड़कियाँ और रोशनदान तक इस तरह बंद कर लिये कि बाहर से रोशनी और ताजी हवा का उन तक पहुंचना दूभर हो गया। इस प्रकार वे कूपमंडूकता एवं घुटन के शिकार हो गये और आत्म प्रवंचना से ग्रस्त अपने घर में अर्धमूर्छित पड़े रहे। लिहाजा दुनिया उनसे बहुत आगे निकल गई और वे दुनिया से बहुत पीछे रह गये।

जाति व्यवस्था के चलते न केवल भारतीयों के आंतरिक व बाह्य संपर्क एवं आदान–प्रदान में कमी आई बल्कि उनकी सोच व कार्यक्षेत्र का दायरा भी संकुचित हो गया जिसकी वजह से वैदिक व बौद्धकाल की अपनी प्रगति की रफ्तार को बनाये रखने की जगह वे अवनति की ओर खिसकने लगे। परिणामस्वरूप, मध्यकाल तक आते–आते प्रगति के शिखर से नीचे गिरते हुए भारतीय अवनति के निम्नतम स्तर तक पहुँच गये। अवनति के इस दौर में भारतवासी इतने कमजोर, निरूपाय व असहाय हो गये कि सिर झुकाकर करीब एक हजार वर्षों की लम्बी दासता झेलने और इस दौरान नाना प्रकार के अपमान व अत्याचार सहन करने के अलावा जीने का उनके पास कोई अन्य विकल्प नहीं रहा। इस संदर्भ में नायपाल (संद, शाह, 1994:26) का यह कहना बहुत सही है कि मानवीय साहचर्य और कार्य की किसी वृहद सांगठनिक अवधारणा की अनुपस्थिति के कारण ही भारतवासी अपने सारे कला–कौशल, ध्यान–ज्ञान और शौर्य प्रदर्शन के बावजूद प्रगतिशील संसार से पिछड़ने और पराजित होने को बाध्य हुए।

संस्कृति का आध्यात्मिकता एवं असांसारिकता की ओर अधिक झुकाव

संस्कृति का आध्यात्मिक होना बुरा नहीं है क्योंकि आध्यात्मिकता के अच्छे परिणाम भी देखने में आते हैं। किंतु भारत में संस्कृति के अति आध्यात्मिक होने के कुछ परिणाम अत्यधिक घातक सिद्ध हुए। जिनमें एक तो यह कि इसके चलते भारतीयों ने उत्थान–पतन और जय–पराजय को जिस अर्थ में लिया और इनकी जो कसौटियाँ निर्धारित कीं वे कालांतर में समाज की प्रगति के लिये बहुत विघातक सिद्ध हुईं। दूसरे, यह कि अतिआध्यात्मिकता की वजह से सांसारिकता भारतीयों के जीवन से यदि विलुप्त नहीं हुई तो कम से कम हाशिये पर अवश्य चली गई। वैसे सांसारिकता कभी भी यहां तक कि आज के भौतिक प्रधान युग में भी, भारतीयों के जीवन में केन्द्रीय आकर्षण का विषय नहीं रही। अति आध्यात्मिकता का तीसरा और व्यावहारिक दृष्टि से कदाचित सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि आध्यात्मिकता की आड़ में समाज के निहित स्वार्थ से प्रेरित संप्रभु वर्ग को ऐसी वैचारिकी व विधान बनाने का मौका मिल गया जिसके माध्यम से वह श्रेणीबद्ध असामनता, अन्याय व भेदभाव पर आधारित अपारगम्य एवं कठोर जातिगत संरचना का विकास कर सका जो कालांतर में भारतीय समाज के पतन व पराभव का प्रमुख कारण बनी। जिसके विनाशकारी परिणाम से मुक्ति पाने के लिए भारतीय समाज सदियों से संघर्ष कर रहा है किंतु उसे सफलता नहीं मिल पा रही है।

अति आध्यात्मिकता के तहत उत्थान, पतन एवं जय–पराजय को भारतीयों ने जिस अर्थ में लिया है वह उस अर्थ से बिल्कुल भिन्न है जो अन्य संस्कृतियों व समाजों के लोगों द्वारा इनके बारे में लिया गया है। भारतीयों के लिये उत्थान से आशय आत्मिक उत्थान या आध्यात्मिक उत्थान से है। भौतिक या सांसारिक उत्थान या प्रगति से नहीं। इसी प्रकार उनके लिये जय या जीतने का अर्थ दूसरों के ऊपर विजय या दूसरों को जीतने से नहीं, बल्कि स्वयं को जीतने से है। भारतीय दूसरों को पराजित करने, उन्हें नियंत्रित करने, उन पर शासन करने की तुलना में स्वयं को जीतने, स्वयं को वश में करने और स्वयं पर शासन करने को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

दूसरों को जीतने का महत्व भारतीयों के लिये इसलिये नहीं था क्योंकि वैदिक संस्कृति, जो भारतीय संस्कृति की आत्मा है, की दृष्टि में दूसरा कोई है ही नहीं। वरन सभी अपने हैं। दूसरा तो दृष्टि दोष है, वास्तविकता नहीं। वास्तविकता तो है "इशावास्यं इदं सर्वम" जिसे मानने वाले 'आत्म एकत्व' में विश्वास रखते हैं। जिसके अनुसार लोगों के शरीर भले अलग हों किन्तु ईश्वर के अंश के रूप में सभी व्यक्ति या सभी के शरीर में एक ही आत्मा का वास है। व्यक्ति और व्यक्ति में जो (अथवा शरीर) भिन्न है वह नाशवान है और जो (अर्थात आत्मा) अभिन्न है वह ईश्वर के अंश के रूप में अमर है। चूंकि सभी ईश्वर के अंश हैं इसीलिये सभी समान हैं और सभी अपने हैं। यही वजह है कि सिद्धांततः भारतीय संस्कृति में अपने और पराये के बीच भेद करने को हेय समझा जाता रहा है। भारतीयों का मानना है कि 'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम, उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम"।

भारतीय संस्कृति में परहित या परोपकार को परमधर्म निरूपित किया गया है। भारतीयों का मानना है कि "परहित बस जिनके मन माँही, तिन कँह जग दुर्लभ कछु नाहीं" अथवा "परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परनिन्दा सम नहिं अधिमाई"। इन मान्यताओं के चलते दूसरों पर आक्रमण करने और उनको पराजित कर उन पर शासन करने की लालसा भारतीयों के मन में जागृत होने की शायद ही कोई संभावना होती है। ऐसे में उन्हें यदि कभी युद्ध करने के लिए विवश होना भी पड़ा तो सामान्यतः ऐसा उन्हें अपनी रक्षा करने के लिए ही करना पड़ा। चूँकि आक्रामकता को आत्मरक्षा का एक प्रभावकारी माध्यम माना जाता है इसीलिये आक्रामकता के अभाव में भारतीय भले ही आक्रमणकारी शत्रुओं को बार–बार पराजित कर भगाने में कामयाब रहे हों किन्तु एक बार पराजित होने

के बाद उन्हें लम्बी दासता झेलनी पड़ी। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय तो दूसरों के हित की बात करते रहे, जबकि दूसरों को लूटने और उनका अहित करने वालों ने उन्हें गुलाम बनाने, उन पर हुकूमत करने और उनके संसाधनों पर ऐश करने से परहेज नहीं किया।

हालांकि सबको अपना समझना और सबके हित के बारे में सोचना भारतीयों की सामान्य प्रवृत्ति रही– यह एक सच्चाई है– इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है किंतु भारतीय जनजीवन में यह सच्चाई सदा बनी रही, यह भी नहीं कहा जा सकता है। दरअसल, वैदिक धर्म के ब्राह्मण धर्म में रूपांतरण (185 ई.पू.) के उपरांत व्यावहारिक जीवन में वैदिक विशेष रूप से उपनिषदीय सिद्धांत एवं मूल्यों का स्थान मिथ्याचार, कर्मकांड एवं पाखंड आदि ने ले लिया। लिहाजा किताबों में भले ही भारतीय स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं एकता की बात करते रहे हों, किन्तु व्यवहार में वे अपने ही समाज की महिलाओं तथा शूद्र एवं अतिशूद्र भाइयों के साथ केवल भेदभाव ही नहीं बरते बल्कि उन्हें दासता की बेड़ियों में जकड़ने से भी परहेज नहीं किया। जो अंततः उनके विनाश का कारण बना।

दरअसल, भारतीय समाज के पतन की शुरुआत तो उसी दिन से हो गई, जिस दिन से उसमें असामानता, अन्याय और भेदभाव पर आधारित विधान को लागू किया गया। तदनंतर, उसमें देवदासी एवं नगर वधू तथा म्लेच्छ व अछूत जैसे वर्गों के अस्तित्व में आने के साथ अतीत का यह गौरवशाली समाज किसी बाह्य शत्रु से नहीं बल्कि स्वयं से पराजित हो पतन के निम्नतम गर्त में पहुंच गया। वस्तुतः, भारतीय समाज में कथनी और करनी (अर्थात एक हाथ में स्वतंत्रता, समानता, न्याय और आत्म एकत्व सम्बन्धी वेदान्त के सिद्धांत और दूसरे हाथ में असमानता, अन्याय और भेदभाव सम्बन्धी मनु का व्यावहारिक जीवन का विधान) के बीच अन्तरसम्बन्धी यह पाखंड ही अतीत में उनके पतन व पराभव के लिए उत्तरदायी रहा। अगर भारतीय अपनी कथनी और करनी सम्बन्धी इस पाखंड और इससे उत्पन्न जात–पात सम्बन्धी भेदभाव से नहीं उबरते हैं तो उन्हें अपने अतीत के खोये हुये गौरव को पुनः प्राप्त करने का सपना देखना छोड़ देना चाहिए।

भारतीयों में असांसारिकता की ओर अधिक झुकाव पाये जाने के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि अति आध्यात्मिकता ने उनके जीवन में असांसारिकता को बढ़ावा दिया।

दरअसल, किसी समाज में आत्याध्यामिकता के चलते अधिकांश लोग असांसारिक व विरक्त हो जाते हैं जिससे उसकी भौतिक प्रगति तो अवरुद्ध होती ही है साथ ही उसमें एकता व संगठन का भी अभाव हो जाता है। प्रगति एवं विकास के अवरुद्ध होने तथा एकता व संगठन के अभाव के कारण समाज कमजोर हो जाता है। ऐसे में अगर कोई बाह्य समाज उस पर आक्रमण करता है तो उसके लिये अपनी रक्षा कर पाना कठिन हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति में अति आध्यात्मिकता तथा असांसारिकता की ओर अधिक झुकाव ने जहां भारतीयों की भौतिक प्रगति व सामरिक सुदृढ़ता को अवरुद्ध किया वहीं उनमें ऐहिक सुख–समृद्धि के प्रति लालसा पैदा करने की जगह विरक्ति की मानसिकता का विकास किया। जिससे वे अन्य समाजों को पराजित कर उनके संसाधनों का अपने हित संवर्धन में इस्तेमाल करने का प्रयास करने की जगह अपने संसाधनों की रक्षा करने से भी विमुख हो गये, जो अतीत में उनकी लंबी पराधीनता का एक प्रमुख कारण बना।

चूँकि किसी समाज का उत्थान, पतन एवं जय–पराजय बहुत कुछ हद तक उस समाज की संरचना की गुणवत्ता पर निर्भर करता है और संरचना विधान द्वारा परिभाषित, निर्देशित व नियंत्रित होती है तथा विधान वैचारिकी से शक्ति ग्रहण करता है इसीलिये यह माना जा सकता है कि यदि वैचारिकी भेदभावरहित व न्यायपूर्ण है तो विधान भेदभावरहित व न्यायपूर्ण होगा और यदि विधान भेदभावरहित व न्यायपूर्ण है तो वह एकता व विकासपरक भी होगा और अगर विधान भेदभाव रहित न्याय, एकता व विकासपरक है तो सामाजिक संरचना भी भेदभावरहित, न्यायसंगत तथा एकता व विकासपरक होगी। इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि यदि समाज का कोई वर्ग अपने निहित स्वार्थों के वशीभूत हो समाज की संरचना में अपने हित के अनुरूप परिवर्तन करना चाहता है तो वह अपनी संप्रभु स्थिति तथा शक्ति व सत्ता पर अपनी पकड़ के माध्यम से सामयिक तौर पर ऐसा कर तो सकता है, किंतु यदि विधान व वैचारिकी में वह तदुनुकूल परिवर्तन नहीं ला पाता है तो उसके द्वारा आरोपित संरचनात्मक परिवर्तन टिकाऊ नहीं हो सकता। किंतु संप्रभु वर्ग द्वारा अपने हित के अनुकूल समाज की संरचना में आरोहित परिवर्तन भले ही अन्याय व भेदभावपूर्ण हो, लेकिन यदि उसके सपोर्ट में वह उसके अनुकूल अन्याय व भेदभावपूर्ण विधान व वैचारिकी का विकास कर पाने में कामयाब हो जाता है तो उसेक द्वारा समाज की संरचना में आरोहित परिवर्तन लम्बे

समय तक चल सकता है। यद्यपि यह हमेशा नहीं चल सकता क्योंकि अन्याय व भेदभाव पर आधारित होने की वजह से या तो आंतरिक प्रतिरोध या बाह्य आक्रमण की वजह से उसका एक न एक दिन विनिष्ट होना तय है। ऐसा इसलिये क्योंकि न्याय के अभाव में समाज में एकता व संगठन का कमजोर पड़ना और एकता व संगठन के कमजोर पड़ने से समाज का अवनति को प्राप्त होना तय है, और किसी अवनत व कमजोर समाज का अधिक समय तक बना रहना संभव नहीं होता है।

भारत में वैदिक संस्कृति, वैदिक धर्म, वेदान्त वैचारिकी एवं वेदान्ती जीवन पद्धति पर आधारित थी। वेदान्त वैचारिकी स्वतंत्रता, समानता व आत्म एकत्व के सिद्धांतों पर आधारित बहुत कुछ हद तक लोकतांत्रिक परंपराओं द्वारा निर्देशित एक न्यायपरक पारगम्य व खुली वर्णगत संरचना की परिपोषक थी। कालांतर में विशेष रूप से स्मृति काल में ब्राह्मणों ने समाज में अपनी संप्रभु स्थिति को सदा–सर्वदा के लिए बनाये रखने के उद्देश्य से वैदिक धर्म को ब्राह्मण धर्म तथा वेदान्त वैचारिकी को वर्णाश्रम–धर्म–कर्म एवं पुनर्जन्म सम्बन्धी मान्यताओं पर आधारित ब्राह्मण वैचारिकी में रूपांतरित करते हुए शास्त्रीय विधानों, विशेष रूप से मनु के, विधान के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता एवं आत्म एकत्व के सिद्धांतों पर आधारित खुली व पारगम्य वर्ण संरचना को श्रेणीबद्ध असमानता, अन्याय व भेदभाव पर आधारित अपारगम्य, बन्द एवं कठोर जाति संरचना में रूपांतरित कर दिया। असमानता, अन्याय व भेदभाव पर आधारित अपारगम्य व बन्द जाति व्यवस्था के चलते समाज में एकता कमजोर हुई और विकास अवरुद्ध हो गया। ऊपर से भेदभावपरक ब्राह्मण वैचारिकी एवं शास्त्रीय विधानों के चलते समाज का नब्बे प्रतिशत भाग शिक्षा, शस्त्र व सम्पत्ति के अवसरों से वंचित होने के कारण समाज के विकास तथा सुरक्षा में सार्थक योगदान कर सकने की स्थिति में नहीं रहा। परिणामस्वरूप, मध्यकाल के आते–आते भारत पतन व पराभव को प्राप्त होने से अपने को बचा नहीं सका।

वैदिक धर्म उदात्त, लचीला व ग्रहणशील था। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है कि आगे चलकर विशेष रूप से स्मृति काल के दौर में ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय हुआ जिसके चलते समाज में अंधविश्वास, मिथ्याचार, कर्मकांड, बाह्य आडंबर, पाखंड एवं पुरोहितवाद का प्रसार हुआ तथा पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा की आड़ में संकीर्णता, बहिष्कार एवं छुआछूत को बढ़ावा मिला। ब्राह्मण धर्म में रूपांतरण के पश्चात

धर्म, जो पूर्व में वैदिक धर्म के तहत उदात्त, लचीला व ग्रहणशील था, संकीर्ण, कमजोर व वर्जनशील बन गया। परिणामस्वरूप, पूर्व में भारत आए आक्रांताओं में जो यहां रह गये वे तो धीरे–धीरे यहां के धर्म व समाज के अभिन्न अंग बन गये किंतु ब्राह्मण धर्म के दौर में संकीर्णता, कठोरता एवं वर्जनशीलता के चलते ऐसा नहीं हो पाया। उदाहरण के लिए इतिहास में ऐसा उल्लेख मिलता है कि तेरहवी सदी में रतन जू नाम का एक शक या हूण मूल का व्यक्ति कश्मीर के राजा के दरबार में एक उच्च पद पर पदस्थ था। वह हिंदू बनना चाहता था लेकिन ब्राह्मणों ने उसे हिंदू नहीं बनने दिया। बाद में वह मुसलमान बन गया। आगे चलकर उसका बेटा वहां के राजा को मारकर खुद राजा बन बैठा। उसने वहाँ के बहुत से ब्राह्मणों को मारकर झेलम में डुबो दिया (संद, दिनकरः 2013:234)। बंगाल की भी बहुत कुछ ऐसी ही कहानी है। कहते हैं कि वहां काला पहाड़ नाम का एक राजा था जो कदाचित किसी मुसलमान लड़की से विवाह करना चाहता था। बंगाल के पंडितों ने जब इसकी अनुमति नहीं दी तो वह मुसलमान बन गया। मुसलमान बनने के बाद उसने वहां के पंडितों व अन्य अनेक लोगों का जबरन धर्मांतरण करवाया।

ब्राह्मण धर्म में अस्वीकृति एवं बहिष्कार का दायरा अत्यधिक व्यापक था। ब्राह्मण धर्म के दौर में अगर कोई भारतीय किसी कारण से भारत के बाहर गया अथवा उसे दास बनाकर भारत से बाहर ले जाया गया तो लौटने पर वह भले हिंदू बने रहना चाहता हो, किंतु ब्राह्मण धर्म के संकीर्ण व कमजोर प्रावधानों के तहत उसे हिंदू के रूप में स्वीकार किये जाने की जगह अपवित्र करार कर हिंदू धर्म से बहिष्कृत कर दिया जाता था। इसी प्रकार अगर कोई मुसलमान अपना जूठा या अपना छुआ हुआ पानी किसी गांव के कुयें में डाल देता तो उस पानी को पीने के कारण पूरे गांव के लोगों को मुसलमान करार दे दिया जाता था। ऐसे में अगर उस गांव के लोग फिर से हिंदू बनने की पहल करते भी थे तो न तो उनकी पहल का स्वागत कर उन्हें हिंदू के रूप में स्वीकार किया जाता था और अगर इस बावत् (अर्थात अशुद्ध हो जाने के बाद, जिसमें उनका कोई दोष नहीं होता था, शुद्ध होने के लिए) वे प्रायश्चित भी करना चाहते तो हिंदू धर्म के ब्राह्मणवादी संस्करण में न तो इसका कोई प्रावधान था और न ही इसकी कोई गुंजाइश थी (देखिये, दिनकर, 2013:228–38)। स्मृति काल में बोया गया सामाजिक भेदभाव का बीज भक्ति काल तक जांत–पांत, छूत–अछूत के रोग के रूप में हिंदू समाज को किस हद तक ग्रस्त कर लिया था इसे रविदास एवं कबीर जैसे भक्तिकालीन संतों की वाणियों से समझा जा सकता है।

"जात–जात में जात है, जौं केलन में पात।
रविदास मानुख ना जुरि सकै, जब लौं जात न जात।"
"रविदास पूत सब प्रभु कै, कोउ नहिं जात कुजात।" (रविदास)
"काहे को कीजे पांडे छीति विचारा,
छीतहिं ने उपजा संसारा।
छोति–छोति करता तुम्महि आये,
जो तू ब्राम्हन बम्हनी को जाया।
तो आन बाट काहे नहिं आया।
तुम कत बाम्हन, हम कत सूद।
तुम कत लोहू, हम कत दूध।।

–(कबीर)

बात केवल मानसिक संकीर्णता एवं संकुचित परंपराओं तक ही सीमित होती तो गनीमत थी। लेकिन ब्राह्मण धर्म के तहत छोटी–छोटी बातों को लेकर जाति, धर्म और समाज से बहिष्कार का रोग उत्तर से लेकर दक्षिण तथा पूरब से लेकर पश्चिम तक पूरे देश में इस कदर फैल गया था कि बड़ी संख्या में लोगों को न चाहते हुए भी अपना पैतृक धर्म छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। कालांतर में यह यहां के लोगों के कमजोर पड़ने और बाह्य आक्रांताओं से पराजित होने का बहुत बड़ा कारण बना।

संक्षेप में, बावजूद इसके कि भारतीय संस्कृति में कई ऐसी विशेषतायें हैं जिन्होंने अतीत में भारतीय समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और आगे उस पर पड़ने वाले अनेक घात–प्रतिघात के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किया तथापि जैसा कि उपुर्यक्त चर्चा से स्पष्ट होता है, उसमें कई ऐसी बातें भी देखने को मिलती हैं जो अतीत में उसके पतन व पराभव के लिए उत्तरदायी रहीं। उदाहरण के लिए, भारतीय संस्कृति में अन्तर्मुखता, आध्यात्मिकता एवं आसांसारिकता पर अधिक जोर, धर्म में सिद्धांत की जगह कर्मकांड के बढ़ते वर्चस्व के चलते इसका नदी, पहाड़, पत्थर, पीपल व गौ की पूजा तथा जात–जनेऊ, छूत–अछूत, शुभ–अशुभ विचार एवं भाग्य–दुर्भाग्य पर विश्वास और तिलक, चंदन, जटा–जूट सम्बन्धी आडम्बर जैसे छुद्र विषयों एवं संकुचित परंपराओं में सिमटाव के अतिरिक्त सामाजिक संदेशों के अंतर्गत स्वतंत्रता, समानता, सहचर्यता, सांगठनिक एकता की जगह असमानता, भेदभाव, विभेदीकरण, विघटन एवं बिखंडन की

ओर अधिक झुकाव जैसी कई ऐसी बाते हैं जो अतीत में भारतीय समाज के पतन व पराभव के लिए उत्तरदायी रहीं। भारतीयों की इस सोच ने कि यह संसार माया है, जीवन क्षण भंगुर है, यहां राजा–रंक जो कोई भी आता है वह एक न एक दिन जाता है, न यहां कुछ लेकर आये हैं और न यहां से कुछ लेकर जायेंगे, उनके लिए संपन्नता, विपन्नता, सफलता, विफलता, जय–पराजय, स्वाधीनता–पराधीनता सम्बन्धी दुनियादारी की समस्त सोच को अर्थहीन बना दिया। लौकिक उपलब्धियों के लिए संघर्ष के अर्थहीन होने की विरक्तिमूलक मानसिकता ने भारतीयों को सांसारिक दृष्टि से शिथिल व पौरुषहीन बना दिया। जब इलहोक उनके लिए निस्सार हो गया तो पतन व पराभव को रोकने अथवा संसार को जीतने के लिए उद्दम करने का उनके लिए कोई अर्थ ही नहीं रहा और जब किसी समाज के लोगों की सोच ऐसी हो जाती है तो उसको पराभूत होने से बच पाना आमतौर पर मुमकिन नहीं होता है।

भारतीय समाज के पतन व पराभव के कारणः स्वामी विवेकानंद के विचार

शोभा बाजार, कलकत्ता में 28 फरवरी 1897 को उपस्थित जन समूह को सम्बोधित करते हुए विवेकानंद (1989:5:163–65) ने कहा कि भारत के पतन का एक प्रधान कारण यह था कि इसने अपना कार्यक्षेत्र संकुचित कर लिया था और वह भी यहाँ तक कि कालांतर में इसने अपनी ज्ञान संपदा को अपने ही लोगों तक विस्तारित नहीं होने दिया। इसका दूसरा प्रधान कारण यह था कि इसने बाहर जाकर दूसरे राष्ट्रों से अपनी तुलना नहीं की। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **स्वामी जी की दृष्टि में विस्तार और आदान–प्रदान ही उन्नति व अभ्युदय के मार्ग हैं, जिनकी अतीत में हमने अनदेखी की और हम पतन व पराभव को प्राप्त हुए।**

भारत और भारतीयों के पतन के लिए विवेकानंद कार्यक्षेत्र के संकोच के साथ दृष्टि की संकीर्णता को भी उत्तरदायी ठहराते हैं। वस्तुतः ये दोनों कारण बहुत कुछ मायने में एक हैं क्योंकि कार्यक्षेत्र का संकोच बहुत कुछ दृष्टि की संकीर्णता की ही उपज है। जहाँ तक दृष्टि की संकीर्णता का प्रश्न है स्वामी जी का कहना है कि उस जाति से तुम क्या आशा कर सकते हो जो सैकड़ों वर्ष तक यह जटिल प्रश्न हल करती रह गई कि पानी का लोटा दाहिने हाथ से पीना चाहिये या बायें हाथ से। इससे और अधिक अवनति क्या हो सकती है कि देश के बड़े–बड़े मेधावी मनुष्य, भोजन के प्रश्न को लेकर यह तर्क करते हुये सैकड़ों वर्ष बिता दें कि क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना

चाहिये अथवा सैकड़ों वर्ष इस बात पर वाद–विवाद करते हुये बितायें कि तुम हमें छूने लायक हो या हम तुम्हें और इस छूत–अछूत के कारण कौन–सा प्रायश्चित करना होगा। जहाँ तक कार्यक्षेत्र के संकोच का प्रश्न है उनका कहना है कि वेदान्त के निहित सत्य कुछ अरण्यवासी संन्यासियों द्वारा रक्षित होकर छिपे रहे, शेष सब लोग केवल छूत–अछूत, खाद्य–अखाद्य और वेशभूषा जैसे प्रश्नों को हल करने में ही व्यस्त रहे (विवेकानंद, 1989:5:163–65)।

भारत की अवनति के सम्बन्ध में विवेकानंद (1989:5:166–67) ने एक और बात की और लोगों का ध्यान आकृष्ट किया, वह यह कि हम दूसरी जातियों से अपनी तुलना करने के लिये विदेश नहीं गये और हमने संसार की गति पर ध्यान रखकर चलना नहीं सीखा। हम इस तरह की बेकार की बातों में उलझे रहे कि भारत के बाहर जाना अनुचित है, जिसे ध्यान में रखते हुए उन्होंने लोगों का आह्वान किया कि जितना तुम भारत के बाहर अन्य देशों में घूमोगे उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। उनका कहना था कि **जीवन का स्पष्ट लक्षण है विस्तार। अगर तुम जीवित रहना चाहते हो तो तुम्हें विस्तार करना ही होगा। जिस क्षण से तुम्हारा विस्तार रूक जायेगा उसी क्षण से मान लो कि मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है। विपत्तियाँ तुम्हारे सामने हैं।**

स्वामी जी का मानना था कि भारतीय समाज की जात–पांत, ऊँच–नीच, छुआछूत तथा महिलाओं की अवनति सम्बन्धी विसंगतियाँ भारतीय समाज का मूल स्वभाव नहीं हैं और न ही ये समाज के स्थायी भाव हैं। जिन कारणों से इन बुराइयों ने समाज में अपनी जड़ जमाई उन्हें दूर कर इनसे पार पाया जा सकता है (सिंह, 2016:39)। आजादी के बाद संवैधानिक प्रावधानों के तहत किये गये प्रयासों के फलस्वरूप भारतीय समाज में आये परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुये आज उनके उपर्युक्त कथन की सत्यता को प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित सिद्ध होते देखा जा सकता है।

भारतीय समाज का पतन व पराभव– कारण और निदानः आम्बेडकरीय संदृष्टि

आम्बेडकर की दृष्टि से भारतीय समाज के पतन व पराभव का मूल कारण जाति व्यवस्था को निरूपित किया जा सकता है। आम्बेडकर जाति को भारतीय समाज का सबसे बड़ा दोष मानते थे। उनके अनुसार यह सामाजिक संकीर्णता व मानसिक बीमारी

की सूचक है। इसने समाज में जनभावना का अंत किया है, असमानता, अलगाव, असंगठन व दासता को जन्म दिया है तथा सामुदायिक जीवन पद्धति का गला घोंट दिया है। यह समाज में विषमता व फूट को बढ़ावा देती है। इसने हिंदू समाज में आपसी भाईचारा, सहयोग, संगठन को कमजोर किया है। इसके चलते हिन्दुओं में अलगाव, एकाकीपन, असुरक्षा व असहायपन का विकास हुआ। अलगाव व एकाकीपन उन्हें असहाय, कमजोर व कायर बना देता है। जिसकी वजह से दूसरों से जब उनका मुकाबला होता है तो वे अपने को एकाकी व निरूपाय समझकर उनका डटकर सामना करने की जगह भाग खड़े होते हैं क्योंकि उनको इस बात का भरोसा नहीं होता कि संकट की इस घड़ी में उनके सहधर्मी उनका साथ देंगे।

डॉ. आम्बेडकर का मानना है कि जाति ने हिन्दुओं में न केवल अलगाव व एकाकीपन का विकास किया और संगठन व एकता को कमजोर किया बल्कि उनमें उदीसनता का भाव भी पैदा किया। उदासीनता व्यक्ति में निष्क्रियता व जड़ता को जन्म देती है। समाज की प्रगति को अवरुद्ध करती है तथा समाज को अवनति व पतन की ओर ले जाती है (सिंह, 2002:45, 78–79)।**आम्बेडकर (1974:42–44) का मानना था कि हिन्दू समाज का ताना–बाना हिन्दुओं को एक नहीं बल्कि जातियों के अलग–अलग दरबों में बन्द करता है। एक हिन्दू अपने को दूसरे से छोटा या बड़ा समझता है, अपने बराबर का भाई नहीं समझता। इसलिये जब तक हिन्दुओं में जाति विद्यमान है, हिन्दू संगठित नहीं हो सकते। वे कमजोर और निरीह बने रहेंगे। उन्हें दूसरों के अपमान व अत्याचार को विवश होकर सहन करना पड़ेगा।**

डॉ. आम्बेडकर के अनुसार हम कह सकते हैं कि जाति समाज में श्रेणीबद्ध असमानता, अन्याय, भेदभाव, अलगाव व फूट को बढ़ावा देती है, आपसी सहयोग, भाईचारा, एकता व संगठन को कमजोर करती है। यह लोगों में असुरक्षा, एकाकीपन व उदासीनता का भाव पैदा करती है। जाति के चलते भारतीय कमजोर व निरीह रहे। परिणामस्वरूप, शक्ति, शौर्य, साहस, सम्पदा व साधन के रहते हुये भी उन्हें विदेशी आक्रमणकारियों से पराजित होना पड़ा। इसलिये उनकी दृढ़ मान्यता थी कि भारतीय समाज को यदि अपने अस्तित्व को बचाना है तो उसके पास जाति के उन्मूलन के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं है।

आम्बेडकर ने भारतीय सामाजिक संरचना में जाति के उन्मूलन पर केवल जोर ही नहीं दिया बल्कि उन कारणों को समाप्त करने के लिये पहल भी की जो जाति संरचना की निर्यामक इकाई बनाने और बनाये रखने के लिए उत्तरदायी हैं। संरचना की निर्यामक इकाई क्या होगी और ये इकाईयाँ किस तरह एक संरचना या ढांचे में परस्पर आबद्ध होंगी यह उस समाज के नियम एवं विधान द्वारा परिभाषित व तय किया जाता है और नियम–विधान सहित इस पूरे रचनाक्रम को तार्किक औचित्य एवं संरक्षण उस समाज की वैचारिकी (आइडियोलाजी) प्रदान करती है। हिन्दू समाज व्यवस्था के अंग हैंः जातिगत सामाजिक संरचना, शास्त्रीय विधान तथा वर्णाश्रम धर्म, कर्म व पुनर्जन्म सम्बन्धी मान्यताओं पर आधारित ब्राह्मण वैचारिकी। डॉ. आम्बेडकर ने भारतीय समाज व्यवस्था में हिन्दू व्यवस्था के इन तीनों अंगों को नकारते (रिजेक्ट करते) हुये इनकी जगह वर्गगत सामाजिक संरचना तथा ऐतिहासिक क्षतिपूर्ति समायोजनात्मक स्वतंत्रता व न्यायपरक विधान एवं हिन्दू कोड बिल और स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्वपरक बौद्ध वैचारिकी पर आधारित लोकतांत्रिक वैचारिकी को स्थापित करने की पहल की।

जातिवाद, संप्रदायवाद, समुदायवाद जैसी विभाजनकारी शक्तियाँ भेदभाव व फूट को बढ़ावा देती हैं जिससे समाज कमजोर होता है। आम्बेडकर (संद. भगवानदास 1968:1863–85) का कहना है कि अतीत में भारत ने केवल संसदीय लोकतंत्र ही नहीं अपितु अपनी आजादी भी खो दी। अपनी आजादी इस देश ने इसलिए नहीं खोई कि वह कमजोर था बल्कि इसलिये कि उसके कुछ अपने आदमियों ने उसके साथ विश्वासघात किया। जब सिंधु पर मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुआ तो उसके सेनापति ने कासिम के एजेन्ट से घूस लेकर अपने राजा दाहिर के लिए लड़ने से मना कर दिया। जयचन्द ने मुहम्मद गौरी को भारत पर आक्रमण के लिए बुलाया और अपने तथा सोलंकी राजाओं की ओर से उसे सहायता देने का आश्वासन दिया। जब शिवाजी हिन्दुओं की मुक्ति के लिए लड़ रहे थे तो दूसरे मराठा सरदार और राजपूत राजा मुगल सम्राट की ओर से युद्ध कर रहे थे। जब अंग्रेज सिखों का विनाश कर रहे थे तो सिखों का प्रमुख सेनापति गुलाब सिंह चुप बैठा था, वह सिख राज्य की रक्षा के लिए नहीं आया। सन 1857 में जब भारत के अधिकांश भाग में स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी जा रही थी तो सिख चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे थे।

आपसी फूट और विश्वासघात के दूषपरिणाम से आगाह करते हुए डॉ. आम्बेडकर आगे कहते हैं कि संप्रति देश में जातिवाद और संप्रदायवाद सरीखे पुराने शत्रुओं के अतिरिक्त भिन्न और विरोधी राजनीतिक मान्यताओं से सुसज्जित अनेक राजनीतिक दलों का उदय हो रहा है, (ऐसे में) **भारतीय, राष्ट्र को समुदाय से श्रेष्ठ अथवा समुदाय को राष्ट्र से बड़ा मानेंगे इस बावत् अभी कुछ कहा नहीं जा सकता किन्तु यदि वे समुदाय को राष्ट्र से बड़ा मानेंगे तो वे अपनी आजादी को न केवल दूसरी बार बल्कि सदा के लिए खो देंगे (सिंह, 2002:166–67)।** इसके विरुद्ध सभी भारतीयों को संगठित होकर लड़ना चाहिए।

उपसंहार

मानव विकास के आदिमतम स्तर पर केवल समाज और (उसके संरचनात्मक प्रकार्यात्मक प्रतिरूप) समाजतंत्र का अस्तित्व था। आगे चलकर धर्म एवं धर्मतंत्र तथा राज्य एवं राज्यतंत्र अस्तित्व में आये। इन तंत्रों में इकाइयों के बीच सम्बन्धों की रचना तथा क्रियाओं का संचालन, नियमन एवं नियंत्रण, सम्बन्धित तंत्र के नियम एवं विधान के माध्यम से होता है। जब यह कहा जाता है कि धर्म या राज्य, प्रजा या समाज को धारण करता है तो इसका आशय धर्म या राज्य से नहीं बल्कि धर्म या राज्य के विधान से होता है क्योंकि व्यावहारिक रूप से धर्म या राज्य नहीं, बल्कि धर्म या राज्य का विधान प्रजा या समाज को धारण करता है। ऐसा इसलिये क्योंकि विधान के आधार पर ही समाज की रचना होती है। विधान के आधार पर ही समाज का संचालन होता है और विधान के आधार पर ही व्यक्ति व समाज पर नियंत्रण रखा जाता है। इसीलिये विधान बड़ा है, व्यक्ति या संगठन नहीं। व्यक्ति व संगठन विधान के निर्यामक या रचयिता हो सकते हैं। ये इसमें रद्दोबदल कर सकते हैं किंतु बनने या रद्दोबदल होने के बाद शासन तो विधान का ही चलता है। व्यक्ति या संगठन का नहीं। व्यक्ति भले ही विधान लागू करने वाले शासक या संगठन का कोई कारिन्दा या स्वयं शासक या संगठन का प्रमुख ही क्यों न हो, लेकिन हकीकत में शासन जैसा कि पूर्व में कहा गया है, विधान का ही चलता है। विधान इसलिये भी ताकतवर होता है क्योंकि एक बार जब वह बन जाता है तो जल्दी

बदलता नहीं है और खासतौर पर तब तो इसका बदलना बहुत कुछ नामुमकिन होता है, जबकि इसे ईश्वर या ईश्वरीय शक्ति से विभूषित किसी व्यक्ति द्वारा निर्मित मान लिया जाता है। शासक या संगठन प्रमुख जो विधान को लागू करता है वह तो आता–जाता रहता है। लेकिन विधान सामान्यतया बना रहता है। यदि विधान बदलता है या उसमें आंशिक परिवर्तन या संशोधन होता भी है (हालांकि उसमें बदलाव अथवा परिवर्तन या संशोधन आसानी से नहीं बल्कि बहुत मुश्किल से होता है) तो उसके बाद भी चलती तो विधान की ही है न कि उसे बनाने या उसमें बदलाव लाने या उसे लागू करने वाले की। अगर विधान बनाने या उसे लागू करने वाले को अपनी कुछ चलानी होती भी है तो उसके लिए पहले उसे विधान में बदलाव लाना होता है, जो जैसा कि पूर्व में कहा गया है आसान नहीं होता है।

दरअसल, कोई समाज पराभूत और पतन को तभी प्राप्त होता है जबकि वह कमजोर हो और कमजोर तभी होता है, जबकि उसकी संरचना में बुनियादी खामियां या त्रुटियां हों। समाज की संरचना व्यक्तियों व समूहों के बीच सम्बन्धों से बनती है। समाज में सम्बन्ध चूंकि न्याय के आधार पर बनते हैं इसीलिये हम कह सकते हैं कि सम्बन्धों के रचनाक्रम के रूप में सम्बन्धों से बनी समाज की संरचना का आधार भी न्याय है। सामाजिक सम्बन्ध और सामाजिक संरचना किन्हीं नियम विधान द्वारा परिभाषित, नियमित व नियंत्रित होते हैं और नियम व विधान की रचना चूंकि न्याय को निर्धारित या सुनिश्चित करने के लिए होती है इसीलिये कहा जा सकता है कि नियम व विधान का आधार भी न्याय है। सामाजिक संरचना और उसे आकार देने वाले विधान को तार्किक, औचित्य एवं नैतिक संपुष्टि प्रदान करने की स्रोत वैचारिकी होती है। वैचारिकी वस्तुतः विचारों, विश्वासों एवं प्रतीकों की एक बहुत कुछ व्यवस्थित संहिता होती है जो सामाजिक संरचना और उसे आकार देने वाले नियम व विधान को तार्किक औचित्य एवं नैतिक संपुष्टि प्रदान करती ताकि ये लोगों द्वारा सामान्य रूप से स्वीकार किये जायें और बने रहें। संरचना एवं इसे परिभाषित करने वाले नियम व विधान को तार्किक औचित्य एवं नैतिक–संपुष्टि प्रदान करने का आधार चूंकि न्याय है, इसीलिये कहा जा सकता है कि

वैचारिकी का आधार भी न्याय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक संरचना, विधान एवं वैचारिकी तीनों का आधार न्याय है। ऐसे में इनमें किसी में न्याय के अभाव का अर्थ हुआ उसका कमजोर होना और चूंकि सामाजिक संरचना, विधान और वैचारिकी से अभिन्न रूप से जुड़ी होती है इसलिये अगर इनमें न्याय का अभाव हुआ तो इनसे अभिन्न रूप से जुड़े होने के कारण संरचना में न्याय का अभाव होना और उसके फलस्वरूप उसका कमजोर होना स्वाभाविक है और अगर समाज की संरचना कमजोर होती है तो उसका पतन व पराभव होना स्वाभाविक है। जिसे दृष्टिगत रखते हुए हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज के पतन व पराभव का कारण जानने के लिए हमें उसके पतन व पराभव के कालखण्ड (या अवधि) में उसकी संरचना तथा विधान व वैचारिकी में न्याय की स्थिति पता करनी होगी।

भारतीय समाज के पतन व पराभव काल (स्मृति काल एवं मध्यकाल) की सामाजिक संरचना तथा विधान एवं वैचारिकी के सम्बन्ध में पूर्व में की गई चर्चा के आधार पर निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि वर्णाश्रम धर्म, कर्म एवं पुनर्जन्म की मान्यताओं पर आधारित तत्कालीन ब्राह्मण, वैचारिकी, मिथ्या, विश्वास, अन्याय एवं भेदभाव पर आधारित थी। इसी प्रकार मनु सहित कमोवेश सभी स्मृतिकालीन शास्त्रकारों के विधानों में स्वतंत्रता, समानता व न्याय का नितांत अभाव था। इसके अलावा तत्कालीन जाति आधारित बंद एवं अपारगम्य सामाजिक संरचना में स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं बंधुता का पूर्णतः अभाव था। जिसे ध्यान में रखते हुए सारांश रूप में कहा जा सकता है कि स्मृतिकाल एवं मध्यकाल के दौरान भारतीय समाज के पतन व पराभव का मूल कारण वर्णाश्रम धर्म, कर्म एवं पुनर्जन्म की मान्यताओं पर आधारित ब्राह्मण वैचारिकी तथा मनु के विधान सहित अन्य शास्त्रीय विधान एवं जाति आधारित सामाजिक संरचना का अन्यायपरक, भेदभावपरक तथा विभाजनपरक होना है। ऐसे में अगर हम एक सशक्त व उन्नत भारतीय समाज जो अपने अतीत के खोये हुये गौरव को पुनः प्राप्त कर सके के सपने को साकार करना चाहते हैं तो हमें एक न्यायपरक, एकतापरक व विकासपरक वैचारिकी, विधान एवं सामाजिक संरचना का विकास करना होगा जो धर्म, जाति व

क्षेत्रीय एवं भाषायी निष्ठाओं से परे एक सामान्य नागरिक संस्कृति के विकास तथा एक सामान्य नागरिक विधान एवं एक सामान्य नागरिक समाज की रचना के बिना संभव नहीं है। यद्यपि यह कार्य अत्यधिक कठिन एवं चुनौतीपूर्ण है किंतु असंभव नहीं है। बस जरूरत है दृढ़ इच्छाशक्ति, मजबूत सामूहिक संकल्प तथा संगठित सतत प्रयास की।

सारांश

न्याय समाज की बुनियाद है। यह सामाजिक सम्बन्ध एवं सामाजिक संरचना का आधार है। समाज में इसका निश्चयन सामाजिक नियम तथा कानून एवं विधान के माध्यम से होता है। नियम, कानून एवं विधान तथा इसके द्वारा परिभाषित एवं नियमित समाज की सरंचना के औचित्य एवं पुष्टि की स्रोत वैचारिकी है। इससे यह अर्थ निकलता है कि यदि विधान और वैचारिकी न्यायपूर्ण नहीं हैं तो संरचना भी न्यायपूर्ण नहीं होगी। संरचना में न्याय के अभाव का अर्थ है कि समाज के आधार का कमजोर होना। आधार कमजोर होने से यह बहुत कुछ निश्चित है कि देर–सबेर समाज का ढांचा बैठ जाएगा और समाज ढह जाएगा। ऐसे में अगर हम एक मजबूत व उन्नत समाज का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें दो बातों को ध्यान में रखना होगा। एक तो यह कि हमारा विधान और विधान को वैचारिक व नैतिक औचित्य प्रदान करने वाली वैचारिकी न्यायपूर्ण हो। दूसरे यह कि विधान और वैचारिकी आसमान से नहीं आते। वे समाज से ही उद्‌भूत होते हैं। इसीलिये समाज को सतत अपनी विधान निर्मात्री मशीनरी पर नजर रखनी चाहिए कि वह अपनी शक्ति व अभिजात्य स्थिति का बेजा इस्तेमाल अपने हित में अन्यायपूर्ण विधान की रचना में न कर सके। अगर लोगों को ऐसा लगता है कि मौजूदा विधान निर्मात्री मशीनरी द्वारा विधायी प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में लाभ के पदों के निश्चयन तथा पेंशन व अन्य विशेषाधिकार व सुविधायें आदि प्रदान किये जाने के मामले में लिये गये निर्णय या बनाये गये विधान न्यायिक दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं हैं तो समाज को उन्हें दुरुस्त करने के लिए आवश्यक पहल करनी चाहिए। अगर आज हमारा समाज अन्याय को समाप्त कर न्याय को पुनः स्थापित (रिस्टोर) नहीं करता है तो देर–सबेर उसका पतन व पराभव उसी प्रकार होना निश्चित है जिस प्रकार अतीत में अन्यायपूर्ण शास्त्रीय विधान तथा वर्णाश्रम धर्म–कर्म एवं पुनर्जन्म की मान्यताओं पर आधारित

अन्यायपूर्ण वैचारिकी एवं अन्यायपूर्ण जाति व्यवस्था के चलते हुआ। समाज में बुद्धिजीवियों, विशेष रूप से समाज वैज्ञानिकों का जहां यह नैतिक दायित्व बनता है कि वे ऐसे विषयों को समाज के सम्मुख उठायें, वहीं मीडिया से जुड़े लोगों की यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि वे इन्हें आम जनता तक पहुंचाये।

❐

सन्दर्भ

1 *सुभाष कश्यप,ब्लू प्रिंट ऑफ पोलिटिकल रिफार्म, शिप्रा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2003*

2. *रजनी कोठारी, भारत में राजनीतिः कल और आज, वाणी प्रकाशन,दिल्ली, 2010*

3. *रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2013*

4. *भगवानदास, दस स्पांक आम्बेडकर (वाल्यूम 2) बुद्धिस्ट पब्लिशिंग हाउस, जालंधर,1968*

5. *विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य (खण्ड 5) अद्वैत प्रकाशन, कलकत्ता, 1989*

6. *रमेशचन्द्र शाह, भारत की दुर्दशा की नायपाली धारणाधर्मयुग 45(II) : 26, 1994*

7. *रामगोपाल सिंह, न्यायः एक अवधारणात्मक विवेचन, मीडिया विमर्श, 9(35),89–99, 2015*

8. *राम गोपाल सिंह स्वामी विवेकानंदः जीवन एवं विचार दर्शन नेशनल पब्लिशिंग हाउस,जयपुर, 2016*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* **ISSN 0974 -1100**
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 31–39 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

महावीर स्वामी का भारतीय दर्शन में विशिष्ट योगदान

डॉ. मौसमी सोलंकी

जिस प्रकार धार्मिक जीवन का आधार आचार है, उसी प्रकार व्यावहारिक जीवन की रीढ़ नीति है और यह भी तथ्य है कि जिस प्रकार बिना नीव के मकान की रचना नहीं हो सकती वैसे ही बिना नैतिक जीवन के धार्मिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है । नीति, धर्म का आधार है । यही कारण है कि प्रत्येक धर्म–प्रवर्तक, धार्मोपदेश और धर्म–सुधारक ने धर्म के साथ नीति का भी उपदेश दिया । जनसाधारण को नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा दी ।

जैन नीति के सिद्धान्त यद्यपि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव द्वारा निश्चित कर दिये गये थे और दीर्घकाल तक चलते भी रहे थे, किन्तु उन सिद्धान्तों को युगानुरूप प्रदान करके भगवान महावीर ने निश्चित किया और यही सिद्धान्त अब तक प्रचलित है ।[1]

भगवान महावीर का जन्म चैत्र शुक्ल, त्रयोदशी के दिन क्षत्रिय कुण्डग्राम में राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशाला देवी की कुक्षि से ईसा पूर्व 599 में हुआ था । आपने 30 वर्ष गृहवास में बिताये, तदुपरांत श्रमण बने, साढ़े बारह वर्ष तक कठोर तपस्या की, केवल ज्ञान प्राप्त किया और फिर धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया । 30 वर्ष तक अपने वचनामृत से जगत जीवों के लिए कल्याण–मार्ग बताया और आयु समाप्ति पर 72 वर्ष की अवस्था में कार्तिक अमावस्या, दीपावली के दिन निर्वाण प्राप्त किया ।

महावीर स्वामी जैन परम्परा के चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर है । वर्तमान समय में उन्हीं का धर्म शासन चल रहा है । भारतीय और भारतेत्तर सभी धर्म– प्रवर्तकों, उपदेश को से भगवान महावीर का उपदेश विशिष्ठ रहा है ।

आज समाज में विग्रह वर्ग–संघर्ष, अराजकता आदि पनप गये हैं, इनका मूल कारण उपरोक्त अनैतिक आचरण और व्यवहार ही है । एक ओर धन के ऊँचे अम्बार और दूसरी और निर्धनता एवं अभाव की गहरी खाई ने ही वर्ग संघर्ष और असन्तोष को जन्म दिया है, जिसके कारण देश में, संसार में विप्लव उठ खड़ा हुआ है । इस पाप रूप अनैतिकता के विपरीत अन्य व्यक्तियों को सुख पहुॅचना, अभावग्रस्तों का अभाव मिटाना, रोगी आदि की सेवा करना, समाज में शांति स्थापना के कार्य करना, धन का अधिक संग्रह न करना, कटु शब्द न बोलना, मिथ्या भाषण न करना, चोरी, हेरा–फेरी आदि न करना पुण्य है, नैतिकता है, नीति पूर्ण आचरण है । भगवान महावीर का युग संघर्षों का युग था । उस समय आचार, दर्शन, नैतिकता, सामाजिक ऊँच–नीच, वर्ण व्यवस्था, दास–दासी प्रथा आदि अनेक प्रकार की समस्याऐं थी । ब्राम्हण वर्ण अपने ही स्वार्थों में लीन था, मानवता पद–दलित हो रही थी, क्रूरता का बोल–बाला था, नैतिकता को लोग भूल गये थे । ऐसे कठिन समय में भगवान महावीर ने उस युग की समस्याओं को समझा, उन पर गहन चिन्तन किया और उचित समाधान दिया ।

भगवान महावीर ने यज्ञ–याज्ञ आदि तथा पंचाग्नि तप को पापमय कहा और बताया कि नैतिकता का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से है ।[2] भगवान महावीर ने इस अनैतिकता को तोड़ा । उन्होंने अपने श्रमण संघ के चारों वर्णों और सभी जाति के मानवों को स्थान दिया तथा उनके लिए मुक्ति का द्वार खोल दिया । भगवान महावीर ने जन्म से वर्ण व्यवस्था को नकार कर कर्म से वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त प्रतिपादित किया[3] और इस प्रतिपादन में नैतिकता को प्रमुख आधार रूप में रखा । भगवान महावीर ने मानव को स्वयं अपने भाग्य का निर्माता बताकर मानवता की प्रतिष्ठा तो की ही साथ ही मानवों में नैतिक साहस भी जगाया । भगवान महावीर के वचन का अनुमोदन धम्मपद में भी मिलता है और गीता के शांकर भाष्य[5] में भी है ।

श्रमण भगवान महावीर के युग में अनेक दार्शनिक–परम्पराऐं थी । कोई परम्परा नित्यवाद पर बल दे रही थी तो दूसरी परम्परा अनित्यवाद को । कोई परम्परा अन्तिम तत्व कों ही स्वीकार करती थी तो दूसरी परम्परा उसका निषेद्य करती थी । कोई परम्परा संसार की विभिन्नता का कारण जड़ तत्व को मानती थी तो दूसरी परम्परा आत्मतत्व को । इस प्रकार परस्पर विरोधी वाद अपने मण्डन में दूसरे के खण्डन में लगे हुए थे । भगवान महावीर ने देखा कि इस विरोध का मूल मिथ्या आग्रह है । वस्तु में अनन्त धर्म है । उन

अनन्त धर्मों में से कोई किसी पर बल दे रहा है, कोई किसी पर । गहराई से चिन्तन करने पर परिज्ञात होगा कि उस पर अनेक दृष्टियों से विचार किया जा सकता है । किसी एक धर्म का प्रतिपादन किसी एक अपेक्षा विशेष से होता है । अतः उसे अनेकान्तवाद या स्याद्वाद कहते हैं । दर्शनिक क्षेत्र में महावीर की यह महान देन है । अनेक धर्मात्मकवस्तु के निरूपण के लिए ''स्यात्'' शब्द का प्रयोग आवश्यक है । ''स्यात्'' का अर्थ है किसी अपेक्षा विशेष से किसी एक धर्म की दृष्टि से कथन करना । वस्तु के अनन्त धर्मों में से किसी एक धर्म का विचार उसी दृष्टि से किया जाता है दूसरे धर्म का विचार दूसरी दृष्टि से किया जाता है । इस तरह वस्तु के धर्मभेद से ही दृष्टिभेद उत्पन्न होता है । इस अपेक्षावाद या सापेक्षवाद का नाम ही स्याद्वाद है । स्याद्वाद जीवन के उलझे हुए प्रश्नों को सुलझाने की एक विशेष पद्धति है । उसमें न अर्धसत्य को स्थान है और न संशयवाद को ही । भगवान महावीर ने ''स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति'' के आधार से प्रस्तुत समस्या को सुलझाया है । सापेक्ष या निरपेक्षउभय स्वरूपात्मक वस्तु के स्वभाव को ग्रहण करना ही यथार्थ दृष्टि है । किसी भी पदार्थ का आत्यन्तिक निषेध और आत्यन्तिक विधान नहीं होता । प्रत्येक कार्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सीमा से आबद्ध है ।

भगवान महावीर ने कहा है कि प्रतिक्षण प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद और न्याय होता है । ज्ञान का अनन्त पर्याय है । व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार उन्हें अधिकृत करता है, किन्तु सत्य सदा अपेक्षा के साथ बंधा हुआ है । भगवान महावीर ने सापेक्षवाद के रूप में स्याद्वाद का प्ररूपण किया । ''जैन दर्शन'' क्या है ? उत्तर – उन्होंने कहा ''मिच्छा दंसणसमुहो मित्यादर्शन का समूह । संसार में जिनती भी दृष्टियॉ है उन्हें मिला दीजिए जैन दर्शन बन जायेगा । जैन दर्शन की अनेकात्मकता ने सभी दर्शनों के विचारों को एकत्र होने का सुअवसर प्रदान किया । सबका साम्यकीकरण कर दिया और सबके लिये उसने अपना द्वार खोल दिया । सभी को आकर्षण हुआ और वे एकत्रित हो गये । कोई भी दृष्टि आकर उसमें रह सकती है, समा सकती है । जैसे समुद्र में आकर सारी सरिताऍ मिल जाती है वैसे ही सारी दृष्टियॉ जैन दर्शन में आकर मिल जाती है । वे पृथक–पृथक सरिताएँ है । सरिताओं में समुद्र नहीं है । सरिताएँ समुद्र में है । वे विभक्त दृष्टियॉ है उनमें जैन दर्शन नहीं है ।[6] धर्म और दर्शन भारतीय संस्कृति के मूल तत्व है जिनके कारण ही भारत विश्व में गुरू गरिमा से अलंकृत सर्वोच्च आसन

पर आसीन था । अपने इस अस्तित्व को आज भी संजोये भारत धर्म व दर्शन के माध्यम से संसार को ज्ञान लोक से आलोकित कर रहा है । अतः स्पष्ट होता है कि भारतीय धर्म व दर्शन की थाती युगबोध के लिए आधार स्तम्भ है ।

धर्म व दर्शन का समन्वयात्मक सम्बल मानव को मानवता की तुला पर गुरूतर करता है । जब मनुष्य चिन्तन सागर में गोते लगाता है, तब दर्शन का और जब उस चिन्तन को अपने जीवन में उतारता है, तब धर्म का उदय होता है । अतः यह कहा जा सकता है कि धर्म और दर्शन सापेक्ष है, एक दूसरे के पूरक है । धर्म और दर्शन ही भारतीय संस्कृति के प्राण है । इनका मुख्य विषय है मानवता का कल्याण । महावीर की सबसे बड़ी देन भारतीय धर्म व दर्शन में है । ''अंहिसा'' जिसमें सभी प्रणियों की रक्षा होती है । उन्होंने इस व्रत की महत्ता में बहुत कुछ कहा । अहिंसा तो मनुष्य को ब्रम्हवाद तक पहूँचाने में सक्षम है । जिस धर्म व दर्शन में प्रत्येक प्राणी की रक्षा की विशद भावना समाई हुई है उसकी महत्ता को आँकना आसान नहीं है ।

महावीर ने धर्म और दर्शन को सत्य, अहंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रम्हचर्य की वरीयता से समलंकृत किया । यह उनकी भारतीय धर्म व दर्शन को विशेष देन है । महावीर स्वामी के लोक निर्माणकारी प्रवचन का प्रभाव सर्व प्रथम गौतम आदि गणधरों पर पड़ा, तभी तो वे अपने ज्ञान के अहं को त्याग महावीर का शिष्यत्व स्वीकार कर धन्य हो गये । महावीर स्वामी घूम–घूम कर सबको शिक्षित करते थे । उनकी अमृतोपम् वाणी सभी पर प्रभावशील हो रही थी । जनभाषा में उनका सम्बोधन जहाँ सामान्य जनता को रिझाता था वहीं बड़े–बड़े विद्वान दार्शनिक भी महावीर के उपदेशों से तृप्ति का अनुभव करते थे । समन्वयवादी धर्माचार्यों में महावीर का उत्कृष्टतम् स्थान है । उन्होंने किसी धर्म के प्रति घृणा, अनास्या, द्वेष आदि का भाव कभी भी नहीं व्यक्त किया । उनकी दृष्टि में धर्म का उद्देश्य था जन–जन का कल्याण, भले ही वह कोई भी धर्म का क्यों नहीं हो । इसकी महत्ता को समझते हुए उन्होंने कहा – ''धर्म वह है जिससे विषमता मिटे और समता उत्पन्न हो । धर्म वह है जिससे अपना और सबका कल्याण हो, विकास हो और उत्कर्ष हो ।[7]

महावीर स्वामी ने भारत में ऐसा संदेश फैलाया कि धर्म केवल सामाजिक रूढ़ियों के पालन करने में नहीं किन्तु सत्य धर्म का आश्रय लेने में मिलता है । धर्म में मनुष्य के प्रति कोई स्थायी भेदभाव नहीं रह सकता । कहते हुऐ आश्चर्य होता है कि महावीर की

शिक्षा ने समाज के हृदय में जड़ जमाकर बैठी हुई इस भेद भावना को बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया और सारे देश को अपने वश में कर लिया ।[8] महावीर स्वामी के पॉच महाव्रतों की महत्ता पर प्रकाश डाला जा रहा है जिस पर अमल करने पर विश्व में कल्याण हो सकता है ।

अहिंसा –

महावीर स्वामी ने यही तो उपदेश दिया कि – शब्दादि विषयों के प्रति उदासीन बने हुए मनुष्य को इस संसार में विद्यमान जितने भी त्रास और स्थावर जीव है, उनकों आत्मतुल्य मान, उनकी रक्षा करने में अपनी शक्ति को उपयोग करना चाहिए और इसी प्रकार संयम का भी पालन करना चाहिए । मनुष्य विवेकशील प्राणी है । अतः उसे स्वयं विचार कर किसी को कष्ट नहीं पहूँचाना चाहिए, बल्कि सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति रखना ही सुखदायक है ।

महावीर स्वामी के ''अहिंसा'' अस्त्र को अपना कर ही महात्मा गाँधी ने भारत को स्वतंत्र किया जो संसार में एक अनूठा आदर्श है । यही नहीं वरन् उनके अन्य सिद्धान्तों का भी गाँधी जी पर प्रभाव पड़ा है । वास्तव में ''अहिंसा'' की शक्ति असीम है, यह गाँधी जी ने दुनिया के सम्मुख स्पष्ट कर दिया, फिर भी मानव इसकी महत्ता को क्यों नहीं परख सकता है । महावीर की इस ''अहिंसा'' की देन से युग को उबारा जा सकता है फिर ''अणु'' युद्ध की क्या आवश्यकता, जिससे संसार भयभीत है । अणु से आकुल यह युग विनाश के कगार पर खड़ा है, जिसका उद्धार ''अहिंसा'' से ही सम्भव है ।

महावीर की ''अहिंसा'' आज के परमाणु प्रलय को रोकने में पूर्ण समर्थ है, जबकि संसार इस परमाणु की विकरालता व विनाश को सोचकर काँप उठा है । वास्तव में विश्व के कर्णधारों का यह पावन कर्तव्य है कि वे ''अहिंसा'' की महत्ता को परख युग को पतन से बचाऐं । विश्व के विकास सम्पन्न देश आज परमाणु अस्त्रों को संभाले अपने पौरूष का प्रदर्शन कर रहे हैं, किन्तु महावीर के उपदेशों को उन्हें हृदयसंगम करना चाहिए । महावीर स्वामी ने स्पष्ट कहा है कि – ''पणया वीरा महावीहिं''[9]

सत्य–सत्य का सम्बल संसार की शांति के लिए विशेष लाभप्रद होगा । क्योंकि यदि सभी सत्य पर चले तो फिर संघर्ष होगा ही कैसे, बिना संघर्ष के शांति अपने आप हो जायेगी । महावीर ने अपने पंचव्रत में सत्य को विशिष्ट स्थान दिया । जहाँ सत्य है वहाँ कल्याण है, विनय है, भलाई है । तभी तो आज हमारा राष्ट्रीय प्रतीक भी है ।

''सत्यमेव जयते'' –

महावरी स्वामी ने इस सत्य की महत्ता को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हुए कहा है कि – सत्य ही भगवान है । वास्तव में जो सत्य को अपनाता है वह ईश्वर की श्रेणी में पहूँच जाता है । महात्मा गाँधी का उदाहरण हमारे सामने स्पष्ट है । अस्तेय– महावीर के पंच महाव्रतों में अस्तेय भी एक है । आज की सांसारिक परिस्थिति किसी से छिपी नहीं है । प्रजातंत्र की भी जड़ हिला देने वाली तस्करी प्रवृत्ति ने मानव को आतंकित कर रखा है । जब तक यह बुराई समाज में व संसार में रहेगी, तब तक न तो मानव सुखी बन पायेगा और न विश्व में शांति हो सकेगी । अतः आज के आकुल युग को महावीर के उद्‌बोधनों को हृदयांगम करके विश्व–शांति के मार्ग को प्रशस्त करना चाहिए । महावीर ने स्पष्ट कहा है कि किसी की भी वस्तु बिना पूछे नहीं उठानी चाहिए, चोरी की तो बात ही दूसरी है । विश्व कल्याण की कामना से ही महावीर स्वामी ने इस व्रत को अपनाने पर जोर दिया ।

ब्रम्हचर्य–

महावीर के ब्रम्हचर्य व्रत का बखान विश्वशांति के दृष्टिकोण से जितना अधिक किया जाय, उतना ही थोड़ा है । संसार में अनैतिकता आज किस कदर घर कर गई है कि पाश्चात्य देश तो बिल्कुल पागल से हो गये है । अतः वासना की लौ में झुलसते हुए संसार को महावीर प्रतिपादित ब्रम्हचर्य व्रत से ही बचाया जा सकता है । इसकी महत्ता को परख कर ही उन्होंने स्वयं कहा है कि – ब्रम्हचर्य, उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, संयम और विनय का मूल है ।

अपरिग्रह –

महावीर स्वामी ने समाजवाद व सर्वोदय की दृष्टि से सबके कल्याण हेतु अपरिग्रह व्रत पर विशेष जोर दिया । उनका कहना था कि अपनी आवश्यकतानुसार सामग्री का ही संचय करो न कि अन्य जनों के हक को दबाकर शोषण करों । महावीर ने विश्व कल्याण की कामना से जितना उद्‌बोधन दिया है वह संसार को संवारने के लिये पर्याप्त है । यदि उनके पाँच महाव्रतों को ही आज विश्व अपना ले तो निश्चय ही इस धरती का रूप कुछ और हो जाएगा । यही नहीं वरन् उनके एक–दो ही उपदेशों का पालन मानवता के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है ।

आज संसार अशांत है । समस्त भौतिक सुख–सुविधाओं के रहते हुए भी मानवता त्रस्त है । ऐसी विषम परिस्थिति में केवल महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही शांति

और सुख की स्थापना कर सकते हैं । अतः यदि विश्व के कर्णधार विश्व शांति चाहते है। तो महावीर द्वारा उद्भूत वाडंमय की वरीयता को परख, उसका रंच मात्र भी आचरण में उतार सब कुछ पा सकते हैं ।

इस प्रकार मानवता के कल्याण हेतु महावीर ने असीम ज्ञान की थाती सौंपकर जन–जन के प्रकर्ष की प्रेरणा को स्त्रोत प्रवाहित किया । उनके द्वारा बताए हुए आदर्शों, उपदेशों को यदि आज युग अपनाए तो निश्चित ही संसार स्वर्णीय रूप में परिणित हो जाय, जिसमें सभी सुखी, सम्पन्न व समान होगें । अतः विश्व कल्याण हेतु महावीर के बताए मार्ग पर चलना आवश्यक है ।[10]

1– अहिंसा जैन संस्कृति का प्राण है । मन, वचन और काया से किसी जीव का घात न करना अहिंसा के माध्यम से हमें जैन संस्कृति ने ही सिखाया है ।

2– अनेकान्त दृष्टि भी जैन संस्कृति की अत्यन्त उपयोगी देन है । समाज में अनेक विचार धाराओं के अनुयायी अपने ही पक्ष में श्रेष्ठता का अनुभव करें ।

3– ऐसी विकट समस्या का समाधान अनेकान्त दर्शन के माध्यम से जैन संस्कृति प्रस्तुत करती है ।

4– समन्वयशीलता की प्रवृत्ति जैन संस्कृति की ऐसी देन है जिसमें पारस्परिक विरोध संघर्ष की स्थिति को समाप्त कर देने की अचूक शक्ति है । अनेकान्त दृष्टि समाज को शान्ति, एकता और सहिष्णुता की स्थापना करने में सर्वथा सफल रह सकती है ।

5– जैन संस्कृति अनासक्ति का मूल्यवान संदेश भी देती है ।

6– इसी प्रकार जैन संस्कृति मनुष्य को संयम और आत्मानुशासन के पुनीत मार्ग पर भी आरूढ़ करती है । आचार्य और सत्य के सिद्धान्तों की प्रेरणा देने वाली यह संस्कृति अपरिग्रह का मार्ग खोलती है ।

जैन संस्कृति अपरिग्रह के संदेश द्वारा कितना उपकार करती है ।

7– जैन संस्कृति कर्म सिद्धान्त की प्रतिष्ठा कर यह व्याख्या भी करती है कि मनुष्य को अपने कर्मों के फल अवश्य मिलते हैं ।

8– विश्व मानवता पर संस्कृति का यह उपकार कम नहीं कहा जा सकता है । यह संस्कृति मनुष्य को भाग्यवादी नहीं बनने देती है । यह तो यही सिखाती है कि मनुष्य स्वयं ही अपने भविष्य का निर्माता है ।

9– मनुष्य को यह उद्यमी बनने की प्रेरणा देती है और इस आत्म–विश्वास से भी उसे सम्पन्न कर देती है कि वह कल क्या बनेगा ।

10– करूणा–क्षमा शीलता का औदार्य जैन संस्कृति की अमूल्य देन है । मनुष्य की मनुष्यता का सार करूणाशीलता में जितना सन्निहित रहता है, उतना कदाचित किसी अन्य मानवीय गुण में नहीं – इस हेतु वह क्षमा शीलता के अस्त्र का उपयोग करती है ।[11]

जैन सांस्कृतिक दृष्टि किसी असाधरणता को नहीं देखती । ''जीने दो'' का भाव यही है कि उसके जीने में किसी प्रकार का व्यवधान प्रस्तुत न करें ।

निश्चित ही जैन संस्कृति एक महान संस्कृति है और उसकी उपलब्धियाँ मानव समाज को श्रेष्ठ स्वरूप प्रदान करने में कम नहीं है । इन सभी वादों के बीज जैन तीर्थ में निहित है । यह आवश्यक है कि किसी वाद में ये बीज अधिक प्रत्यक्ष है तो किसी में कम । कहा जा सकता है कि जैन नीति अपने आप में पूर्ण है, सक्षम है और अपनी विशुद्धता, विशालता और विराट स्वरूप के कारण अन्य सभी वादों में इसका प्रभाव झलकता है । अहिंसा का निरूपण जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी मिलता है, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि अहिंसा का जितना सूक्ष्म विश्लेषण जैन धर्म में किया गया है उतना विश्व के किसी भी धर्म में नहीं है । पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, बेन्द्रिय, तेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय प्रभृति किसी भी प्रणी की मन, वचन और कार्य में हिंसा न करना, न करवाना और न अनुमोदन करना जैन धर्म की अपनी अनुपम विशेषता है । मन, वचन और कार्य से किसी भी प्राणी को कष्ट न देना पूर्ण अहिंसा है । आचार का यह महत्वपूर्ण विकास जैन–धर्म की अपनी अमूल्य देन है ।

अहिंसा को केन्द्र मानकर सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह का विकास हुआ है । इसका यही तात्पर्य है कि सभी व्रतों का मूल आधार अहिंसा ही है ।

भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों की समन्वयात्मक समष्टि है जो विश्व में बिखरी हुई जनता से सदैव ही सम्बद्ध रही है जो लोग बाहर से भी यहाँ आये उन्होंने इस देश की संस्कृति में समाहित हो स्वयं को धन्य समझा । यही कारण है कि विभिन्न जाति व धर्मों के लोग बहुत बड़ी संख्या में समन्वयात्मक स्नेह भाव से अपने–अपने आदर्शों का पालन करने में स्वतन्त्र है । आज धर्म निरपेक्षता भारतीय गणतंत्र की गरिमा है । महावीर ने भारतीय संस्कृति को विलगाव से बचाने के लिए समन्वय का स्त्रोत बहुत पहले ही प्रवाहित किया था, जिससे सभी लोग समभाव से जीवन व्यतीत करें । जाति–पांति, वर्ण–भेद, ऊँच–नीच की खाई को पाटने का महावीर ने समाधनीय आदर्श प्रस्तुत किया है ।

सिर मुड़ा लेने, भ्रमण, ओम् कहने से ब्राम्हण निर्जन वन में रहने मात्र से ही मुनि और कुश के वस्त्र पहनने से ही कोई तपस्वी नहीं होता, अपितु समता से क्षमण, ब्रम्हचर्य से ब्राम्हण, ज्ञान की उपासना से मुनि और तप से तपस्वी बना जाता है । कर्म को प्राथमिकता देते हुऐ महावीर ने कहा है कि – मनुष्य कर्म से ही ब्राम्हण कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है । तत्तकालीन परिस्थिति को परख कर महावीर ने समान–कल्याण के लिए वह मंत्र दिया जो युगों तक के लिए वरदान बन गया । आज हमारा प्रजातंत्र भी इसी पर प्रतिष्ठित है । यही कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति को संवार ने में महावीर स्वामी का अद्वितीय योगदान रहा है । उनके उपदेश व आदर्श एवं पांच महाव्रतों को अपना कर मानव असीम सुख का अनुभव कर सकता है । यह थाती भारतीय संस्कृति की वह निधि है जिसका अक्षय भण्डार युग–निर्गणक अमृत उगलता रहेगा । भारतीय संस्कृति महावीर के विशिष्ट योगदान से गौरवान्वित है ।

वास्तव में आज के आकुल युग को उबारने व विश्वशांति स्थापित करने के लिए महावीर के सिद्धान्तों व आदर्शों की नितान्त आवश्यकता है । उनका अहिंसा महामंत्र तो विश्व के लिए वरदान है । अहिंसा को सर्व प्रथम स्थान देकर उन्होंने कहाकि जब सभी जीवित रहने की इच्छा रखते हैं तो फिर क्यों दूसरों की हिंसा की जाये । हिंसक का समर्थन करना भी हिंसा है । अतः प्रत्येक प्राणी के प्राणों की रक्षा करना मनुष्य का परम पावन कर्तव्य है । इन तथ्यों पर गंभीरता से विचार कर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विश्वशांति के लिये महावीर के सिद्धान्त अत्यधिक उपयोगी है । आज का संत्रस्त विश्व महावीर के आदर्शों को अपना कर ही सुख–शांति प्राप्त कर सकता है, जिसमें सभी छोटे बड़े प्राणी समान है । ❐

सन्दर्भ

1 *आचार्य देवेन्द्र मुनि, नीतिशास्त्र जैन धर्म के संदर्भ में, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन दिल्ली, पृ. 44*
2 *आचार्य देवेन्द्र मुनि, नीतिशास्त्र जैन धर्म के संदर्भ में, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन दिल्ली, पृ. 58*
3 *उत्तराध्ययन सूत्र 12/44*
4 *धम्मपद 106*
5 *गीता 4/26–27 पर शाक्यभाष्य*
6 *श्री देवेन्द्र मुनीजी, जैन धर्म एक विश्लेषण, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 537–542*
7 *महावीर स्मारिका, जयपुर, वर्ष 1973, पृ. 1–20*
8 *अहिंसा वाणी अप्रेल–मई, वर्ष 1956, पृ. 9*
9 *आ. क्षु. 1 अ. 1 उ. 3*
10 *डॉ. शोभानाथ पाठक, भगवान महावीर कथा, पाठक प्रकाशन, पृ. 186*
11 *डॉ. राजेन्द्र मुनि, जैन धर्म एक अनुशीलन, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 86–89*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 40–44 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

संस्थागत दलित पत्रकारिता पर शोध की आवश्यकता

डॉ. रूपचन्द गौतम

सूचनाओं के आदान–प्रदान को हिन्दी में पत्रकारिता कहते हैं। जब सूचनाएं क्रमबद्ध होकर समाज को विकसित करने में अपना योगदान देने लगती हैं तब ये समाज विज्ञान में समाहित हो जाती हैं। भारतीय संविधान के अनुसार जिन जातियों को अनुसूची में रखा गया है, आज उन्हें दलित कहा जाता है। दलित जाग्रति के लिए समूचे देश में संस्थाएं बनी। इनके माध्यम से हैंडबिल, पोस्टर, बुकलेट, स्मारिकाएँ, एवं पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित की गईं। यही आगे चल कर दलित समाज का आईना बन गईं। दलित साहित्य को आगे बढ़ाने में इनका भरपूर योगदान रहा। दलित साहित्य को लेकर विभिन्न रूपों में अनेकों विश्वविद्यालयों में शोध कार्य हुए है। दलित तथा गैर दलित युवक–युवतियों ने शोध कार्य किए पर संस्थागत दलित पत्रकारिता पर आज तक अछूती ही रही।

दलितों द्वारा दलित जन जाग्रति के लिए की जाने वाली पत्रकारिता दलित पत्रकारिता है। दलित मुद्दों पर गैर दलितों द्वारा की जाने वाली पत्रकारिता जन जाग्रति के रूप में तो मानी जा सकती है पर स्वानुभूति के रूप में नहीं। दलित जन जाग्रति को केवल दलित ही प्रकट कर सकता है ऐसा मेरा अनुभव रहा है। दलित अस्मिता के संदर्भ में पत्र–पत्रिकाएं, रेडियों एवं टेलीविजन चैनल वाले दलित लेखकों, चिंतकों को याद कर लेते हैं बाकी विकासात्मक मुद्दों पर दरकिनार किया जाता रहा है। यानी देश की अर्थव्यवस्था का मुद्दा हो या रक्षा संबंधित आदि पर दलितों को पूछा तक नहीं जाता। दलित संस्थाएं चाहे कितना भी अच्छा काम क्यों न कर लें ?

वर्तमान दलित समाज में जो परिवर्तन देखा व महसूस किया जा रहा है वह सब फुले, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, मान्यवर कांशीराम जैसे अनेक समाज चिंतकों की देन है। इस परिवर्तन के पीछे दलित समाज के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्क तिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं ौक्षिक संगठनों का प्रभाव है। यह प्रभाव भी उक्त रूपों में देखा जा सकता है। संस्थागत दलित पत्राकारिता ही दलित समाज की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, साहित्यिक, एवं आर्थिक रूप से ऐतिहासिक दृष्टि प्रदान कर सकती है। आज पत्राकारिता ने विभिन्न रूपों में युवक–युवतियों को शोध करने के लिए विवश किया है। शोध निर्देशक आज भी दलित पत्रकारिता के नाम पर नाँक–भौंह सुकोड़ते है। देश के किसी भी विश्वविद्यालय में दलित समाज का कोई प्रोफेसर मीडिया का नहीं है। ऐसी स्थिति में दलित युवक–युवतियों को गैर दलित शोध के लिए निर्भर रहना पड़ता है।

संस्थागत दलित पत्राकारिता के माध्यम से उन दलित महापुरुषों के संगठनात्मक कार्यों को रेखांकित करके उनके चिंतन को दर्शाया जा सकता है, जिससे दलित समाज में बढ़ती हुई सामाजिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक जन जाग्रति को महसूस किया गया है। भावी पीढ़ी उन दलित महापुरुषों के संघर्ष को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सके। संस्थाओं के माध्यम से दलित चेतना कितनी विकसित हुई है? संस्थागत दलित पत्रकारिता ने दलित समाज की किन–किन रूपों में तस्वीर उतारी है तथा दलित समाज को कौन सी दिशा देना चाहती है? इसका ऐतिहासिक विश्लेषण तो संस्थागत दलित पत्रकारिता ही तय कर सकती है।

दरअसल सन 1873 में ज्योतिबा फुले ने सत्यशोधक समाज नामक सामाजिक संगठन बना कर दलित–पिछड़ों को संघर्ष के लिए आवाहन किया था। किसन फागोजी बनसोड ने सन 1901 में सन्मार्ग बोधक अस्पृश्य समाज नामक संगठन बना कर दलितों में जाग्रति के अंकुर अंकुरित किये थे। उत्तर भारत में स्वामी अछूतानन्द हरिहर ने सन 1905 में अछूत महासभा बनाकर जनजागरण प्रारंभ किया। इसके बाद स्वामी जी ने आदिधर्मी आन्दोलन शुरू किया। इसके माध्यम से दलित अधिकारों की लड़ाई अंग्रेजों से लड़ी। वर्ष 1923 में स्वामी जी ने आदिधर्मी समाचार पत्र प्रकाशित किया। महात्मा ज्योतिबा फुले से प्रेरणा लेकर बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने 20 जुलाई 1924 को बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया। सभा से ही बहिष्कृत भारत नामक समाचार–पत्र

प्रकाशित हुआ। दलित समाज को सुरक्षा प्रदान करने के लिए समता सैनिक दल बनाया। पत्र महाराष्ट्र में जन जाग्रति का प्रमुख माध्यम बन गया था। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार से प्रभावित लोग भारतीय बौद्ध महासभा से जुड़े। अम्बेडकर भवन, रानी झांसी रोड, पहाड गंज, नई दिल्ली से धम्म दपर्ण, भरतीय दलित साहित्य अकादमी का मुख पत्र हिमायती, द ऑल इडिया बैकबर्ड (एस.सी./ एस.टी./ओ.बी.सी.) एवं मायनॉरिटी कम्युनिटीज इम्पलाइज फैडरेशन (बामसेफ) नामक सामाजिक संगठन से 14 नवम्बर 1980 से बहुजन संगठक साप्ताहिक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। जिसने दलित समाज के इतिहास दलित साहित्य, दलित आंदोलन को भरपूर ऊर्जा दी।

जैसे–जैसे बामसेफ के टुकड़े होते गए ठीक वैसे–वैसे अपनी–अपनी नीतियों को अपना समाचार–पत्र प्रकाशित करती रहीं। सबसे पहले कांशीराम से तेजन्द्र सिंह झल्ली अलग होकर बामसेफ चलाने लगे। इनकी देखरेख में बहुजन संघर्ष नाम का साप्ताहिक समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। झल्ली साहब से अलग होकर वामन मेश्रम ने बामसेफ बनाई। उक्त बामसेफ के माध्यम से बहुजनों का बहुजन भारत नाम समाचार–पत्र प्रकाशित हुआ। वामन मेश्राम से अलग होकर बी.डी. बोडकर की बामसेफ द्वारा मूलनिवासी टाइम्स समाचार–पत्र प्रकाशित हुआ। अनुसूचित जाति/जनजाति, पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक कर्मचारी संघ (सेवास्तंभ) नामक सामाजिक संस्था ने दलित युवाओं के लिए स्कूल खोले तथा हिन्दी/अंग्रेजी भाषा में वॉयस दी वीक समाचार–पत्र भी प्रकाशित किए। अनुसूचित जाति/जनजाति संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ के माध्यम से डॉ. उदितराज आरक्षण मुद्दे के रूप में आगे बढ़े। वॉयस ऑफ बुद्धा नामक समाचार–पत्र के माध्यम से आरक्षण के प्रति लोगों को जागरूक किया। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ दलित स्टडीज द्वारा प्रकाशित दलित अस्मिता साहित्य व संस्कृति को गति देना प्रारंभ किया। भारतीय दलित साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश के माध्यम से पूर्वदेवा ने दलित समाज की जो तस्वीर खींची उसे हम बखूबी से जानते है। सिद्धार्थ चेरिटेबल ट्रस्ट, लखनऊ से गरीमा भारतीय का योगदन नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। ऐसी संस्थाएं तो और भी देश में होंगी पर उनकी छानबीन तो शोध के माध्यम से ही की जा सकती है।

जिस समय बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश हुआ उस दौरान पूरे देश में दलित सम्मान की लड़ाई लड़ रहे थे। पश्चिमी बंगाल के हरीचंद ठाकुर नमोशूद्रा और पंजाब के मंगूराम आदि हिन्दू नाम से आंदोलन चला रहे थे। महाराष्ट्र से चोखामेला दलित समाज की बेहतरी के लिए आंदोलन कर रहे थे। केरल से नारायण गुरु व महात्मा आयंकाली दलितों के लिए शिक्षा संस्थानों की शुरूआत कर रहे थे। तमिलनाडु से पेरियार ई.वी. रामास्वामी नायकर व अप्पा दुरई के द्वारा दलित आंदोलन की शुरूआत हुई। आन्ध्र प्रदेश से भाग्य रेड्डी वर्मा समाज सेवा के साथ–साथ पत्रकारिता क्षेत्र मे भी कार्य कर रहे थे। जहाँ तक उत्तर प्रदेश की बात है तो स्वामी अछूतानंद हरिहर व खेमचंद दोहरे जाटव समाज से थे। उन्होंने दलित समाज के बीच जाग्रति लाने के लिए अनेक आंदोलन किये। इस तरह की जन जाग्रति को उथल–पुथल का काल माना जाता है।

दलितोंद्धार से जुड़े समाज सेवियों का प्रयास जारी था। धीरे–धीरे दलित चेतना विकसित हो रही थी। दलित समाज रोजी–रोटी की तलाश में गांव, कस्बे छोडकर शहरों की तरफ बढ़ रहा था। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि समूचे भारत में दलित समाज के जागरूक लोग किसी न किसी रूप में समाज परिवर्तन हेतु संघ रत थे। इसलिए यही कहा जा सकता है कि बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर को जहां प्रतिकुल परिस्थितियां मिली वहीं दलित आंदोलन की पृष्ठभूमि की जानकारी का अवसर भी मिला। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के समकालीन दलित समाज के किन–किन लोगों ने संस्था बना कर संघर्ष किया, कितनों ने अखबार निकाले। उन सबकी जानकारी आम पाठकों को मालूम नहीं है। संस्थागत दलित पत्रकारिता सामाजिक न्याय की प्रहरी भी रही है और लोकतंत्र का स्तंभ भी। इसके बिना सामाजिक विकास एवं परिवर्तन की चर्चा करना असंभव है।

मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारती, डॉ. अवन्तिकाप्रसाद मरमट, डॉ. पुरु ोतम सत्यप्रेमी, डॉ. जयप्रकाश कर्दम ने दलित संगठनों के पत्र–पत्रिकाओं में आलेख लिखे हैं। मराठी भाषा में गंगाधर पानतावणे ने महान पत्रकार बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, वि ाय पर शोध कार्य किया हैं तथा डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन ने हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव नाम से शोध कार्य किया है। डॉ. बेचैन का शोध कार्य विशेष रूप से बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर की पत्रकारिता को रेखांकित करता है। इनका

पत्र–पत्रिकाओं में भी लेखन जारी है। उक्त शोध कार्य से ही बेचैन जी का नाम लिम्का बुक में दर्ज हुआ। मोहनदास नैमिशराय पर एक सौ से अधिक शोध कार्य अब तक युवक–युवतियाँ कर चुकी हैं। फीडबैक के संबंध में इन्द्रसिंह धिगान व जसवंत सिंह जनमेजा का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है।

❒

सन्दर्भ

1. *श्यौराज सिंह बेचैन, समकालीन हिन्दी पत्राकारितामें दलित उवाच, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्टीब्यूटर्स प्रा. लि.अंसारी रोड, नई दिल्ली*
2. *श्यौराज सिंह बेचैन, हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अम्बेडकर का प्रभाव, समता प्रकाशन, विश्वास नगर शाहदरा दिल्ली*
3. *मोहनदास नैमिशराय, दलित पत्राकारिता भाग 1–2, श्रीनटराज प्रकाशन, ए–507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग, साउथ गांवड़ी एक्स., दिल्ली*
4. *रूपचन्द गौतम, दिल्ली की दलित पत्राकारिता, श्रीनटराज प्रकाशन, ए–507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग, साउथ गांवड़ी एक्स., दिल्ली*
5. *डॉ. रूपचन्द गौतम, दलित पत्राकारिता का उद्भव और विकास, श्रीनटराज प्रकाशन, ए–507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग, साउथ गांवड़ी एक्स., दिल्ली*
6. *डॉ. गंगाधर पानतानवणे, महान पत्राकार बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन, 32/3, पश्चिमपुरी, नईदिल्ली*
7. *साक्षी गौतम, दलित हलचल, श्रीनटराज प्रकाशन, ए–507/12, करतार नगर, बाबा श्यामगिरी मार्ग, साउथ गांवड़ी एक्स. दिल्ली*
8. *कंवल भारती, स्वामी अछूतानंदजी हरिहर और हिन्दी नवजागरण, स्वराज प्रकाशन, 7/14, गुप्ता लेन, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 45–48 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

भारतीय बौद्धदर्शन सामाजिक वर्णाश्रम व्यवस्था

डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलु

प्राचीनकाल से ही भारत के सामाजिक जीवन में दर्शन का कतिपय वैशिष्ट्य रहा है । प्रत्येक युग की सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक दर्शन एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं । भारतीय दार्शनिकों ने सिद्धान्त और व्यवहार के सामंजस्य को उत्कृष्ट जीवन का मूल आधार माना है । इसी कारण सामाजिक जीवन में दार्शनिक विचारों को मुख्य अंग के रूप में स्वीकार कर उसी के अनुरूप जीवन–व्यापन का प्रयास किया जाता रहा है । इसके विश्लेषण से पुष्टि होती है कि यहाँ के दार्शनिकों ने जो सिद्धान्त प्रदान किये हैं । वे अनुशासित रूप से वैयक्ति तथा समाज कल्याण के लिये थे ।

भारतीय दर्शन सदा से ही व्यावहारिक रहा है । भारतीय सामाजिक जीवन उस सिद्धान्त को भी निरर्थक मानता है, जिसका व्यवहार जीवन में न किया जा सके । यही कारण है कि दार्शनिक सिद्धांतों के व्यवहार में आचार शास्त्रीय तत्वों को प्रश्रय देकार भारतीय दार्शनिकों ने अपनी सामाजिक दूरदर्शिता का परिचय दिया । जिसका मानव जीवन से गहरा सम्बन्ध रहा है । मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए ही विभिन्न दर्शनों का विकास हुआ । प्रायः भारतीय दर्शन में मानव जीवन की अशान्ति एवं दुखद स्थितियों का रहस्योद्घाटन कर उसके समाधान के मार्गो को बताया है । मानव जीवन की कठिनाईयों से मुख मोड़ लेना उतना सुख नहीं होता जितना उन कठिनाईयों को समझकर उनका समाधान ढूँढना ।

भारतीय दर्शन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मानव–जीवन के दुखद पक्षों का चित्रण कर व्यक्ति को भावी जीवन के प्रति वर्तमान में ही सचेत होने का संकेत देता है । भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण एवं लक्ष्य मानव को दुःखों से मुक्त कराना है और सदा इसी पक्ष का पक्षधर रहा है । यही लक्ष्य वर्णाश्रम का भी रहा है वर्णाश्रम और कुछ नहीं, बल्कि दर्शनिक लक्ष्य सिद्धि का आचार विचार शास्त्रीय विधान है । भारतीय दर्शन तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दोनों ने अपने–अपने क्षेत्र में व्यक्तित्व विकास और समाज कल्याण के लिए दो समानान्तर और समरूप मार्गों का प्रतिपादन किया है । जो कि अपने अंतिम छोर पर एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं । भारतीय जीवन शैली का सैद्धान्तिक पक्ष उसका दर्शन है तो उसका व्यावहारिक पक्ष उसकी वर्णाश्रम व्यवस्था । वर्ण–धर्म–वैयक्तिक हित का साधक होते हुए भी उसके सामाजिक जीवन का मुख्य पोषक है । आश्रम धर्म समाज के लिए उपयोगी होते हुवे भी वैयक्तिक जीवनोत्कर्ष का प्रधान सोपान है । दर्शन भी मानव को अपने सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की वास्तविकताओं के प्रति सचेत बनने की सैद्धान्तिक दृष्टि प्रदान करता है । इस तरह वर्णाश्रम मानव के सामाजिक और वैयक्तिक जीवन शैली का मार्ग हो तो दर्शन उस मार्ग का प्रकाश है ।

बौद्ध दर्शन के लक्ष्य, सिद्धान्त एवं नैतिक आधार विधान से मालुम होता है कि इसमें और वैदिक समाज व्यवस्था में कोई भेद नहीं है । वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की भाँति बौद्ध दर्शन भी यह स्वीकार करता है कि मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति है ।

प्रतीत्युतसमुत्पाद बौद्ध दर्शन का प्रधान सिद्धांत है जिस पर सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन आधारित है, जिसके अनुसार प्रत्येक घटना का एक अनिवार्य कारण होता है तथा कारण के उपस्थित होने पर उसका कार्य निश्चित रूप से उपस्थित होता है । इसी सिद्धान्त के अनुसार बौद्ध दर्शन में कर्मवाद की स्थापना हुई । संसार की समस्त घटनाऐं कारण कार्य का प्रवाह है कोई भी घटना शाशवत या नित्य नहीं है । सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील तथा नाश्वान है ।

बुद्ध के अनुसासर जितनी वस्तुऐं है, सबों की उत्पत्ति कारण से हुई है सभी वस्तुऐं अनित्य है, जो नित्य तथा स्थायी मालूम पड़ती है, वह भी विनाशी है । आत्मा भी परिवर्तनशील है । बौद्ध दर्शन स्थायी आत्मा में विश्वास नहीं करता वह अनात्मवाद का समर्थक है । वर्णाश्रम व्यवस्था के सन्दर्भ में बुद्ध के दार्शनिक सिद्धान्त वैदिक विचार धारा के अनुकूल है । बौद्धदर्शन की भाँति वर्णाश्रम व्यवस्था भी सांसारिक घटनाओं की सापेक्षता, लौकिक वस्तुओं की क्षणभंगुरता, पुनर्जन्म, कर्मवाद आदि में विश्वास करता है अन्तर सिर्फ इतना ही है कि वर्णाश्रम व्यवस्था में जहाँ शाश्वत आत्मा की परिकल्पना की जाती है वहाँ बुद्ध आत्मा की अनित्यता में विश्वास करते हैं किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो आत्मा को चेतना का प्रवाह मानकर बुद्ध ने अन्तिम रूप से एक ऐसे तत्व में विश्वास किया है जिसकी गति अविच्छिन्न है । वर्णाश्रम व्यवस्था में भी जिस शाश्वत आत्मा को स्वीकार किया है उसकी गति भी अविच्छिन्न है ।

वैदिक विचारधारा के अनुसार यह आत्मा अपनी जीवन–यात्रा के क्रम में जिन चार आर्य सत्यों का रहस्योद्घाटन किया था, उन सभी का सम्बन्ध सांसारिक दुःखों से है । इसका मुख्य कारण अविद्या या अज्ञानता है तथा इसको दूर कर निर्वाण की प्राप्ति की जा सकती है । निर्वाण प्राप्ति के लिए बौद्धदर्शन में अष्टांगिक मार्ग को अपनाने का विधान बताया है ।

बौद्धदर्शन के चार आर्यसत्य में जो बातें कही गई है वे सभी वर्णाश्रम व्यवस्था में सन्निहित है । अतएव बौद्धदर्शन और वर्णाश्रम–व्यवस्था के लक्ष्य तथा उनकी सिद्धि का नैतिक मार्ग सर्वथा अभिन्न है । यही कारण है कि तिलक ने गीता रहस्य में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि बौद्ध दर्शन एक नवींन दर्शन होते हुवे भी वैदिक दर्शन के समतुल्य है क्योंकि वैदिक समाज व्यवस्था में उत्पन्न रूढ़ियों को सुधारने के लिए ही इसकी उत्पत्ति हुई है ।

बौद्ध–दर्शन और सामाजिक वर्णाश्रम–व्यवस्था में समान रूप से कर्म–बन्धन को स्वीकार किया है । वैदिक दर्शन में ''ब्रम्हसंस्था'', ''ब्रम्हनिर्वाण'' अर्थात् ब्रम्हा में आत्मा के लिए होने की स्थिति है । किन्तु बौद्ध दर्शन इसे मात्र ''निर्वाण'' या ''वासना'' के नष्ट होने पर विराम की स्थिति स्वीकारता है । ''चातुर्वर्ण्य'' में भेद और हिंसात्मक यज्ञयोग को

छोड़कर वैदिक धर्म के अन्य नैतिक नियम न्यून परिवर्तन के साथ बौद्धदर्शन में स्वीकार किये गये है । बुद्ध द्वारा उपदिष्ट पंचमहायज्ञ वैदिक समाज–व्यवस्था के आधर–विधान के पूर्ण अनुकूल है । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि बौद्ध–दर्शन की दृष्टि में वर्णाश्रम व्यवस्था के अधिकांश नैतिक आचार मान्य थे । दोनों ने सामाजिक जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक समानान्तर और समरूप नैतिक आधार का मार्ग निर्दिष्ट किया है । जिससे उत्कर्ष एवं विकास की इस स्थिति में स्वार्थ और परार्थ, व्यवहार और परमार्थ, संसार और निर्माण तथा व्यक्ति एवं लोक के बीच भेद प्रायः समाप्त हो जाता है ।

❐

सन्दर्भ

1 *सूर्यप्रकाश व्यास, (सम्पादक) संगम स्मारिका, जैन–बौद्ध दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2008, पृ. 68*

2 *वही पृ. 69*

3 *डॉ. राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1972 पृ. 93*

4. *श्रीमद्भागवतगीता, गीता प्रेस गोरखपुर, भाग–2, पृ.22*

5. *सूर्यप्रकाश व्यास (सम्पा.) संगम स्मारिका, जैन–बौद्ध दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2008, पृ. 45*

6. *संयुक्त निकाय (सम्पा.) एम. वियोनफिसर एवं रीजडेविड्स, लंदन, 1984 भाग–5, पृ. 8–10*

7. *सूर्यप्रकाश व्यास (सम्पा.) संगम स्मारिका, जैन–बौद्ध दर्शन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2008, पृ. 46*

8. *मदनमोहन सिंह, बुद्धकालीन समाज एवं धर्म, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना 1972, पृ. 110*

9. *बाल गंगाधर तिलक, गीतारहस्य, लो.तिलक मन्दिर, पूना, पृ. 572–73*

10. *श्रीमद्भागवतगीता, गीता प्रेस गोरखपुर, भाग–5, पृ. 17–25*

11. *बालगंगाधर तिलक, लो.तिलक मंदिर, पूना 1973, पृ. 573*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 49–52 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

सामाजिक वर्ण व्यवस्था एवं जातिभेद

डॉ. हेमलता चौहान

सृष्टि के प्रारंभिक क्षणों से ही समाज के मनीषियों ने समाज को सुखी शांत और समृद्ध बनाने के लिए अनेकानेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है । समाज को सुगठित और सुव्यवस्थित बनाने के लिए ऋषि, मुनियों ने वर्णाश्रम व्यवस्था को जन्म दिया जिसकी पृष्ठभूमि में जातिवाद और ब्राम्हणों का धर्मवाद निहित था । इस व्यवस्था पर आधारित समाज निःसंदेह बहुत हद तक सुसंगठित रूप से चलता रहा लेकिन समय के साथ–साथ ढेरों विसंगतिया लेकर यह व्यवस्था विकृत हो गई ।

आज हिन्दू जाति कुरीतियों का घर है इन कुरीतियों ने उसे जर्जर कर दिया है । समय बदला, देश की स्थिति बदली, हम स्वतंत्र हुए परंतु हमारी सामाजिक विषमताऐं आज भी वैसी ही है जैसी वर्षों पहले थी केवल उनके स्वरूप में परिवर्तन आया है । ये दोष कुछ तो अंग्रेजों ने हमारे समाज को दिये थे और कुछ हमारे ही घर के स्वार्थी धर्म के ठेकेदारों ने अपनी मानसिकता के चलते निर्मित कर लिए । एक समय था जब हमारा देश हमारा समाज विश्व के सर्वश्रेष्ठ समाज में गिना जाता था और यहॉ की जनता भी सुखी थी कारण था वर्ण व्यवस्था समाज को व्यवस्थित करने का माध्यम थी न कि विभाजित करने वाला कुचक्र । भारत देश की पवित्र धरा धाम पर भक्त और भगवान के अटूट रिश्तों के उदाहरण भरे पड़ें है फिर उनके बीच न जाति आयी ना वर्ण तभी तो भगवान राम ने शबरी, जो कि भील जाती की थी, के झूंठे बैर खाये थे । गुप्तजी ने लिखा है –

गूढ निषाद शबरी तक का मन रखते है, कानन में प्रभु
क्या ही सरल वचन रहते हैं, इनके भोले आनन
में इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी
इनमें भी मन और भाव है किंतु नहीं वैसी वाणी ।

कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान ने भी प्रेम को माना जाति पॉति उनके भक्त और प्रभु मिलन में बाधा नहीं डाल सकी तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या लेकिन संसार परितर्वनशील है उसकी हर गतिविधि में प्रत्येक क्षण परिवर्तन होता है समाज भी इससे अछूता नहीं है, लेकिन हिन्दूओं में प्रचलित वर्ण व्यवस्था ने समाज की स्थिति डावाडोल कर दी । ब्राम्हण शीर्षस्थ स्थान पर आ गये और शूद्रों को निम्न दर्जा हासिल हुआ, उनका समाज में स्थान गौंण हो गया, उनकी शिक्षा का अधिकार भी उनसे छीन लिया गया उनके सामाजिक जीवन के क्षेत्र को सीमित कर दिया गया और स्तंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया गया । आज भी हम सैद्धांतिक रूप से चाहे कुछ भी कहे व्यावहारिक स्थिति आज भी बहुत ज्यादा नहीं सुधर पायी है । प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी विशेष को निरिह और अपमानित स्थिति में रखना उचित है ?

वास्तविकता यह है कि वर्ण व्यवस्था से समाज के एक वर्ग को फायदा पहूॅचा और एक वर्ग का उत्पीड़न आज भी कहीं न कहीं पल रहा है यद्यपि बहुत से समाज सुधारकों ने इसके लिए प्रयास किये । डॉ. अम्बेडकर उनमें से एक नाम है । अम्बेडकरजी ने अपनी पुस्तक ''हू वेयर शूद्रास'' (शूद्र कौन थे?) के द्वारा हिन्दू जाति व्यवस्था के पदानुक्रम में सबसे नीची जाति यानी शूद्रों के अस्तित्व में आने की जानकारी दी ।

समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था ने जातिवाद को जन्म दिया जहॉ वर्ण व्यवस्था को समाज में बनाये रखने के लिए अस्तित्व में लाया गया वहीं कालांतर में विकृत होकर जातिवाद के अस्तित्व में आने का कारण बनी तथा जातिभेद सामाजिक समस्या बन कर उभरी । आज समाज इसी के कारण विश्रृंखल हो गया है । न तो समाज में परस्पर प्रेम है, न सहानुभूति, न राष्ट्र कल्याण है, न न्याय ।

सामूहिक और सामाजिक हित की बात कोई सोचता ही नहीं है । हम जो कुछ भी करते हैं अपने लिए करते हैं । हमारे सभी कार्य संकुचित जातिवादी विचारधारा पर आधारित है । जाति हित के सम्मुख समाज हित गौंण हो गया । डॉ. अम्बेडकर

अच्छी तरह समझाते थे कि जाति व्यवस्था ही भारत में सभी कुरीतियों की जड़ है एवं बिना इसके उन्मूलन के देश और समाज का सतत् विकास संभव नहीं है ।

अम्बेडकरजी का स्पष्टः मानना था कि व्यापक अर्थों में हिन्दुत्व की रक्षा तभी संभव है जब ब्राम्हणवाद का खात्मा कर दिया जाय, क्योंकि ब्राम्हणवाद की आड़ में ही लोतांत्रिक मूल्यों, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का गला घोटा जा रहा है । अपने एक लेख हिन्दू एण्ड वाण्ट ऑफ पब्लिक कांसस में डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं कि – दूसरे देशों में जाति की व्यवस्था सामाजिक और आर्थिक कसौटियों पर टिकी हुई है । गुलामी और दमन को धार्मिक आधार प्रदान नहीं किया गया है, किंतु हिन्दू धर्म में छुआछूत के रूप में उत्पन्न गुलामी को धार्मिक स्वीकृति प्राप्त है ऐसे में गुलामी खत्म भी हो जाए तो छुआछूत खत्म नहीं होगी । यह तभी सम्भव होगा जब समग्र हिन्दू सामाजिक व्यवस्था विशेषकर जाति व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया जाय । डॉ. अम्बेडकर के मत में मनुस्मृति से पूर्व भी जातिप्रथा थी । मनुस्मृति ने तो मात्र इसे संहिताबद्ध किया और दलितों पर राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक व धार्मिक दासता लाद दी ।

डॉ. अम्बेडकर चातुर्वर्ण व्यवस्था को संकीर्ण सिद्धांत मानते थे जो कि विकृत रूप से सतहबद्ध गैर बराबरी का रूप है । उन्होंने शूद्रों को आर्यों का ही अंग मानते हुए प्रतिपादित किया कि इण्डों आर्यन अर्थात समाज में ब्राम्हणों ने दण्डात्मक विधान द्वारा कुछ लोगों को शूद्र घोषित कर दिया और उन्हें घृणित सामाजिक जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया । नतीजतन शूद्र चातुर्वर्ण की अंतिम जाति न रहकर नीची जातियॉ घोषित हो गयी । डॉ. अम्बेडकर ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन में सुझाव दिया था कि अछूतों का गैर जातीय हिन्दू या प्रोटेस्टेन्ट हिन्दू के रूप में मान्यता दी जाय । अम्बेडकर जी का मानना था कि वर्ण व्यवस्था का सीधा प्रभाव भले ही दलितों व पिछड़ों मात्र पर दिखता हो पर जब सामाजिक विघटन के कारण देश गुलाम हुआ तो सवर्ण भी बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकें ।

कुछ विद्वान जिनमें से कुछ प्रभावित जातियों से है का विचार है कि अंग्रेज अधिकतर जातियों को एक नजर से देखते थे यदि उनका राज रहता तो समाज से काफी बुराईयों को समाप्त किया जा सकता था । ज्योतिबा फुले आदि सामाजिक कार्यर्ताओं की भी यही राय थी ।

सर्वसम्मति से यह कहा जा सकता है कि राष्ट्र की सार्वभौमिक अखण्डता और समृद्धि के लिए यह नितांत आवश्यक है कि देश राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत रहे । देश के हित अहित, मान–अपमान का प्रत्येक देशवासी चिंतन और मनन करें लेकिन भारत वर्ष में फैली जातिवाद की विषैली हवा का झोंका समाज को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है । कुछ जातियां और कुछ लोग आपस में भिड़ रहे हैं । पिछले वर्षों में लगातार बौद्ध समूहों और रूढ़िवादी हिन्दुओं के बीच हिंसक संघर्ष हुये हैं । 1994 में मुबंई में जब किसी ने अम्बेडकर की प्रतिमा के गले में जूते की माला लटका कर उनका अपमान किया था तो चारों और एक साम्प्रदायिक हिंसा फैल गयी थी इसी क्रम में अगले वर्ष इसी तरह की गडबडी हुई तो एक अम्बेडकर प्रतिमा को तोड़ा गया । तमिलनाडु में ऊँची जातियों के समूह भी बौद्ध धर्म के खिलाफ हिंसा में लगे हुये हैं । इसके अलावा कुछ परिवर्तित बौद्धों ने हिन्दुओं के खिलाफ मोर्चा खोल दिया (2006 में महाराष्ट्र में दलितों का विरोध) और हिन्दू मंदिरों में गंदगी फैला दी और देवताओं के स्थान पर अम्बेडकर का चित्र लगा दिया । एक कट्टरपंथी अम्बेडकरवादी संस्था बौद्ध पैंथर्स मूवमेंट ने तो अम्बेडकर के बौद्ध धर्म के आलोचकों की हत्या तक करने का प्रयास किया ।

कहने का तात्पर्य यह है कि वर्ण व्यवस्था ने जिस जातिवाद को जन्म दिया उसमें भेदभाव की स्थिति ने समाज को ऊँच–नीच की खाई में पाट दिया । आज यह आश्वश्यक है कि यदि हम भारतवर्ष की प्राचीन गौरव गरिमा को नष्ट नहीं होने देना चाहते है तो हमें जातिगत भेदभाव को भूलाकर संस्कृति के सौन्दर्य और संयम से परिपूर्ण राष्ट्रीयता की भावना को अपनाना होगा क्योंकि जातिभेद ने आज तक किसी का हित नहीं किया है बल्कि समाज का विभाजन ही किया । वर्तमान भूमण्डलीकरण के युग में जातिभेद का कोई औचित्य नजर नहीं आता है, यदि भेदभाव या नफरत करना है तो अनाचार और अत्याचार से करेगें तभी समाज की उन्नति के साधक बन सकेगें ।

❐

सन्दर्भ

1 *राम शिवमूर्ति आलेख : दलित आंदोलन की नई दिशा, साहित्य शिल्पी*

2 *निर्मल रानी, लेख : दलित नेतृत्व बनाम दलित साहित्य, खबर एक्सप्रेस डॉट काम की प्रिन्ट स्टोरी ।*

3 *राजहंस हिन्दी निबंध, राजहंस प्रकाशन मंदिर मेरठ ।*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* **ISSN 0974 -1100**
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 53–56 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नव बौद्धवाद

श्रीमती मीना परस्ते

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ऐसे ही स्वयंभू महापुरुष थे जिनका जीवन और अनुभव एक ऐसा विशाल दर्पण है ,जिसमें उदात्त भारतीय संस्कृति की विकृतियों का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। जिस प्रकार गॉव के साहूकार साधारण और विवश परिवारों पर अत्याचार करके उनको डाकू बना देते है या डाकू बनने पर मजबूर कर देते हैं उसी प्रकार भारतीय या हिन्दू धर्म की विसंगतियों और विकृतियों ने बाबा साहेब को जन्म दिया। उन्होने बौद्ध धर्म एवं दर्शन को अपने दार्शनिक विचारों का मूलाधार बनाया। अम्बेडकर ने 1956 की विजयादशमी के दिन तथाकथित दलित वर्ग को एक नवींन दिव्य ज्योति प्रदान की और उन्हें बौद्ध धर्म में धर्मान्तरित कर विकास करने का नया मार्ग दिखाया । ऐसी क्रांन्ति भारत में बौद्ध धर्म का एक नया अध्याय बन गया।

बौद्ध धर्म का प्रारंभ बुद्ध के उपदेशों से होता है। बुद्ध ऐसे धर्मोपदेशक है जिनके धर्म का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है जो कि मनुष्य–मनुष्य में भेद नहीं करता। यह धर्म सभी मनुष्यों को समान मानता है। महाकारुणिक बुद्ध द्वारा संसार की धम्म देशना को अम्बेडकर ने 14 अक्टूबर 1956 को धम्मचक्र अनुप्रवर्तन करते हुये उसे पुनः प्रचारित किया। बुद्ध की शिक्षाओं में निहित जनजागरण के संदेशों को अम्बेडकर ने पहचाना और अपनाया जिसके फलस्वरुप आज भारत के करोड़ों दलित अपने दुखों के कारणों को जानकर तथा उनसे मुक्ति कैसे मिलेगी इस विश्वास के साथ संघर्ष कर रहे बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, समता, स्वतन्त्रता और विश्वबंधुत्व जैसे मूल्यों की स्थापना हेतु सदैव प्रयत्नशील हैं। डॉ. अम्बेडकर ने चार वर्णो पर आधारित सामाजिक ढॉचे की हिन्दु

योजना जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता को वर्ण व्यवस्था की पृष्ठभूमि में दलितों के प्रति किये जा रहे भेदभाव और घृणा से परिपूर्ण आचरण ने बाबा साहेब के मन में हिन्दु व्यवस्था के प्रति आक्रोश के बीज बो दिये। भेद यही था कि गॉधी को विदेशियों से तिरस्कार झेलना पड़ा था, तब उन्होने सभी भारतीयों की व्यथा को समझा और स्वतंत्रता में उसका समाधान माना था।

आज यह समाज विशेष परिस्थितियों और सामाजिक समस्याओं से पीड़ित होकर राजनीति में उसके समाधान की ओर मुड़ गया। जिस प्रकार अंग्रेजों के तिरस्कार और गोरे काले के भेद ने मोहनदास को महात्मा गॉधी बनाया और वैदिक जीवन पद्वति में कर्मकाण्ड, वर्ण व्यवस्था,धर्म में हिंसा जैसी प्रवृतियों ने सिद्वार्थ को बुद्ध बनाया।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार प्रारम्भ में जाति प्रथा नहीं थी समाज के कुछ स्वार्थी लोगो ने जो ऊॅचे स्तर के थे, कमजोर लोगों से उनकी ईच्छा के विरुद्व जबरदस्ती काम करवाना प्रारम्भ करवा दिया। इन कमजोर लोगों को शिक्षा प्राप्त करने, व्यापार करने, धन इकट्ठा करने और हथियार रखने से वंचित कर दिया गया। जिससे वे विरोध न कर सकें और अपनी दासता दूर न कर सकें। इस प्रकार जातिवाद को अपनाकर शूद्रों को अपंग कर दिया गया। तब उन्होनें कहा – ''जाति प्रथा को नष्ट करने का एक ही मार्ग है, अन्तरजातीय विवाह न की सहभोज, खून का मिलना ही अपनेपन की भावना ला सकता है।'' वे जाति प्रथा को हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी खराबी मानते थे।

आधुनिक काल में असंख्य लोग जब वर्णाश्रम–धर्म की चक्की में बुरी तरह पीस रहे थे, तब अम्बेडकर ने उन्हें बुद्व की राह दिखाकर अपने दुखों के कारण जानने तथा दुखों के दूर करने का मार्ग दिखाया। भीम राव अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म को मानववादी चिन्तन का आधार बनाकर ब्रह्म, आत्मा, कर्म, पुर्नजन्म, मोक्ष आदि पर अपने दार्शनिक विचारों का विश्लेषण कर नव बौद्धवाद के लिए तत्व विचार प्रस्तुत करते है–

ब्रह्मवाद का खण्डन–

डॉ. अम्बेडकर ने वेदान्त् उपनिषद में ब्रह्म से सम्बंधित विचारों का विश्लेषण कर पाया कि 'ब्रह्मवाद' (Brahmanism) का विचार तीन विभिन्न रुपों में निहित है–'सर्व खल्विदं ब्रह्म–'ब्रह्मस्मि' और 'तत्वमसि' अर्थात क्रमशः सब कुछ ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूॅ और तू वही है। शंकर का अद्वैत वेदान्त भी यही कहता है कि एकमात्र परमतत्व

'ब्रह्म' ही परमार्थसत् है, यह जगत (मिथ्या) है और ब्रह्म एवं आत्मा एक ही हैं। ब्रह्म से परे संसार में कोई भी वस्तु सत् नहीं है। यही ब्रह्मवाद में ब्रह्म को 'नेति–नेति' के द्वारा सम्बोधित किया गया है। तब सकारात्मक रुप में डॉ. अम्बेडकर ने अद्वैतवाद के ब्रह्मवाद में एक व्यवहारिक अन्तर विरोध पाया, जिसका उन्होने इस प्रकार विश्लेषण किया कि अद्वैतवाद यह मानता है कि ब्रह्म एक है और सभी प्राणियों में एक ही आत्मा है। वह अलग–अलग नहीं है बल्कि ब्रह्म रुपी आत्मा (चैतन्य) सभी में एक है। किन्तु व्यवहार में उसे क्यो नहीं लाया गया ? यदि ब्रह्म एक ही है तो सभी मानव प्राणी मूलतः समान है। ऐसा मानना हिन्दु समाज में छूत–अछूत, ऊँच–नींच, ब्रह्मण–चांडाल का भेद समाप्त हो जायेगा।

निरात्मवाद–

डॉ. अम्बेडकर ने अजर–अमर आत्मा के अस्तित्व को नहीं माना क्योंकि वह भी अज्ञात एवं अदृश्य है। अर्थ क्रियाकारित्व की दृष्टि से भी आत्मा का कोई कार्य नहीं है जिसे व्यवहार में सम्पन्न करती हो। बुद्व का अनुशरण करते हुये डॉ. अम्बेडकर ने आत्मा को नहीं माना उसकी जगह उन्होने चित्, मन और विज्ञान को स्वीकार किया, जो तीनों ही पर्याय हैं। मन आत्मा नहीं है और न मन शरीर है, पर साथ ही मन काया के आश्रित है। मन और शरीर दोनो ही एक दूसरे पर आश्रित है। अतः उनका अस्तित्व निर्विवाद है इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध परम्परा के अनुरुप स्वीकार किया। यही सिद्वान्त अम्बेडकर का नव बौद्धवाद कहलाया ।

''बौद्ध धर्म जातिवादीय तत्वों से मुक्त व्यक्तिवादी धर्म है। जो व्यष्टि से समष्टि की ओर जाता है और विशुद्ध आचरण को केन्द्र बिन्दु मानकर आत्मोकर्ष की भावना को पनपाता है। उसने आध्यात्मिक क्षेत्र को ही नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों को भी धर्म की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है। भारतीय संस्कृति को विश्व संस्कृति के रुप में खड़ा करने का श्रेय इसी धर्म को है। विदेशी धरती पर गुलशन के फूल बनकर सुगन्ध को चारों तरफ बिखेरने वाला बौद्धधर्म ही है, जिसकी रग–रग में मानव कल्याण की भावना भरी हुई है।''[1] डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध नैतिकता के आधारभूत मूल्यों–अहिंसा, पंचशील, करुणा, मैत्री जैसे मूल्यों को मानव जीवन की भलाई के लिए महत्वपूर्ण माना है।

बाबा साहेब ने बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन चिन्तन और मनन किया उसके आधार पर "The Buddha and his Dhamma" पुस्तक लिखी जो 1969 में प्रकाशित हुई।

भगवान बुद्ध और उनका धर्म एक विशाल बौद्ध साहित्य का संकलन है । उनका धर्म का सम्बंध वर्तमान जीवन के कर्म से है। इस लिए बाबा साहेब की दृष्टि में ''जैसा बोओगे वैसा काटोगे''। उनका बौद्ध धर्म न हीनयान है और न महायान बल्कि नवयान है। भारत वर्ष में प्रभूत एवं प्रचलित होने के कारण भगवान बुद्ध का धर्म राष्ट्रीयता से संपन्न है। बौद्ध धर्म श्रवण संस्कृति की प्राचीन धारा है जिसमें स्वतंत्रता एवं मातृत्व भाव के आधार पर समाज को सुव्यवस्थित किया है। तथागत बुद्ध का धर्म स्वानुभूति और परम सत्य पर प्रतिष्ठित वैज्ञानिक धर्म है। इसलिए बौद्ध धर्म इतिहास में अपनी एक अलग ही पहचान बना चुका है, जैसे–अब्राहिम लिंकन ने दासों की मुक्ति के लिए किया, पॉल रॉबशन ने अमेरिका के नीग्रो लोगों की मुक्ति के लिए किया, उसी प्रकार भारत में दलितों की मुक्ति के लिए अम्बेडकर ने वही कार्य किया।

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर एक कालजयी महापुरुष थे, उन्होने अपनी विचारधारा को विकसित कर खुले दिमाग से विश्लेषण किया। उनका दार्शनिक विश्लेषण मानवतावादी भूमिका पर आधारित था। आज के आपाधापी, भौतिकवादी युग में तृतीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से बचाने की जो क्षमता बौद्ध धर्म में है, वह अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता । इस दृष्टि से बाबा साहेब का अथक प्रयास और उनका कालजयी व्यक्तित्व अविस्मरणीय रहेगा।

❐

सन्दर्भ

1. *डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर, भारतरत्न डॉ. अम्बेडकर और बौद्ध धर्म, सन्मति रिसर्च इस्टीट्यूट ऑफ इन्डोलॉजी (अलोक प्रकाशन) नागपुर–440001 संस्करण 2000,पृ. 170*
2. *प्रो.सूर्यप्रकाश व्यास, बौद्ध बिन्दु, आर्य भाषा संस्थान, बी.2/143 ए,भदोनी, वाराणासी–221001,संस्करण प्रथम 2012,पृ. 58–59.*
3. *डॉ. शोभा निगम, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1988,पृ. 118,119, 222–225.*
4. *डॉ. विमल कीर्ति, बौद्ध धर्म के विकास में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का योगदान, संगीता प्रकाशन 30/64 गली न. 8 विश्वास नगर शहदरा दिल्ली–110032, संस्करण 1994,पृ. 217–265.*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* **ISSN 0974 -1100**
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 57–61 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

संचार प्रौद्योगिकी का समाज और संस्कृति पर प्रभाव

डॉ. अरूण वर्मा

संचार क्रांति और उससे जुड़ी हुई प्रौद्योगिकी ने दुनिया की तस्वीर बदल कर रख दी है। राजनीति, समाज, संस्कृति, अर्थ व्यवस्था कुछ भी इससे अछूता नहीं है । जगत जोड़ जाल या इण्टरनेट आज दुनिया की सूचना का सबसे बड़ा स्रोत बन चुका है । बाजार और भाषा का रिश्ता भी बहुत पुराना है और ये दोनों समयानुसार बदलते रहते हैं । मनुष्य के इतिहास में हमने देखा है कि विज्ञान की उस देन पर जिससे मानव कल्याण जुड़ा हुआ है उस पर मुनाफा खोरों का कब्जा हो जाता है । संचार क्रांति के संसाधनों के साथ भी ऐसा ही हुआ है । आज कुछ ऐसे विश्व मूल्य है जिनके कारण दुनिया के देशों का सहअस्तित्व टीका हुआ है । स्वतंत्रता, जनतंत्र, शांति, मानव अधिकार और पर्यावरण चेतना ऐसे विश्व मूल्य है जिनके बिना हम मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं । मीडिया पर बाजार और मल्टीनेशनल कम्पनियों का शिंकजा है और अमेरिका भी अपनी आर्थिक शक्ति के साथ सांस्कृतिक दादागिरी दुनिया पर थोपने के लिए एन.ए.सी.टी. (न्यू अमेरिकन सेंचुरी प्रोजेक्ट) जैसी अरबों डॉलर की योजनाऐं चला रहा है ।

संचार के दौर में ज्ञान के बिना, सूचना नेटवर्क का समाज है । ज्ञान की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता का ज्ञान दोनों ही इस दौर में गायब हो गये हैं । मीडिया राजनीति का प्रवक्ता बन गया है । बकोल रवीश कुमार चैनल का एंकर आज सबसे बड़ा गुण्डा है । यह सिर्फ सत्ता की भाषा बोलता है । इस कारण मीडिया की विश्वसनीयता में कमी आई है, इसे लौटाना जरूरी है । हम स्मरण करें कि आज भी नारों और

योजनाओं में भारत की नहीं इण्डिया की चर्चा होती है । प्रमोद महाजन के दौर में शाईनिंग इण्डिया था जो मोदी युग में आते आते मेकिंग इण्डिया हो चुका है । मीडिया के बहुत बड़े चिंतक मैन्यूअल कॉसल ने अपनी तीन किताबों 'द राईजिंग ऑफ नेटवर्क सोसायटी', 'द पावर ऑफ आईडेन्टीटी और 'अवर मिलेनियम' जैसी किताबों में कहा है कि बीसवीं सदी का सिटीजन्स अब इक्कीसवी सदी का नेटिजन्स बन गया है । भारतीय संदर्भ में जो मीडिया अन्ना हजारे के आंदोलन में कूद पड़ा था वहीं मीडिया 2014 के लोकसभा चुनावों में मोदी और भाजपा के झुनझुने बजाने में मशगूल हो गया । भारतीय संदर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण हैं कि अंग्रेजों के अखबार अधिक सेक्यूलर हैं और सैकड़ों विषय में अंग्रेजी में किताबें उपलब्ध है जो कि हिन्दी में नहीं मिलती है । इसके साथ ही हिन्दी के अखबार अपने सोच और नजरिये में अधिक साम्प्रदायिक प्रतीत होते हैं ।

समकालीन संसार में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को उत्तर आधुनिक चिन्तन की पीठिका और उत्तर उपनिवेशवादी व्यवस्थाओं के रूप में देखा जाता है । उत्तर आधुनिक दौर में साहित्य, कला, संस्कृति और जनसंचार माध्यमों पर पश्चिमी चिन्तन और आंदोलनों का विश्व व्यापी प्रभाव पड़ा है । हिन्दी पत्रकारिता जो कि आजादी के पूर्व एक मिशन के रूप में स्वाधीनता के राष्ट्रीय आंदोलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी । आज बाजारवाद के प्रभाव और दबाव में व्यवसाय का रूप ले चुकी है । सम्पादकों की जगह मालिकों और प्रबंधकों ने ले ली है । अखबार में अब प्रतिदिन समाचार से ज्यादा विज्ञापन नजर आते हैं । एडीटोरियल से ज्यादा चिंता इडव्हरटोलियर की होती जा रही है । अखबारों और इलेक्ट्रानिक मीडिया में विज्ञापनों की भरमार के साथ ही भाषा के उपयोग में भी पूरी तरह से असावधानी बरती जा रही है । हिन्दी को हिंग्लिश के चलन में ढालना इसी का परिणाम है । यह वस्तुतः भाषा के अपसंस्कृतिकरण का भी नमूना है । भाषा के मूलोच्छेदन की प्रक्रिया भूमण्डलीकृत बाजारवाद का नतीजा है । यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं की भारतीय टी.वी. चैनलों की हिन्दी से बहुत ही अच्छी हिन्दी विदेशी चैनलों यथा डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक, एनीमल प्लेनेट आदि पर देखी और सुनी जा सकती है । आजकल अखबारों में प्रायोजित और पेड न्यूज (भुगतान खबर) का चलन और बोलबाला भी बढ़ता जा रहा है । इसी के कारण विभिन्न क्षेत्रों के अपात्रों का ग्लोरिफिकेशन भी मीडिया के द्वारा तेजी से हो रहा है । आजकल

देशी, बहुराष्ट्रीय पूंजी ओर बाजार के शिकंजे में मीडिया जगत जकड़ा हुआ है ।

विगत कुछ दशक से न्यूज (समाचार) को मीडिया द्वारा मनोरंजन की तरह परोसा जा रहा है । युद्ध की विभीषिका, आतंकवादी घटनाक्रम, प्राकृतिक विनाश लीला की खबरें हम गरम पकौड़े खाते और चाय की चुस्कियाँ लेते हुए टेलीविजन पर देख सकते हैं । कुल मिलाकर मीडिया ने मनुष्य की व्यापक संवेदना का भी क्षरण और हरण किया है । इस प्रक्रिया के लिए पश्चिमी मीडिया में पिछले दो दशकों से एक शब्द चल निकला है – ''इन्फोटेनमेंट'' अर्थात् सूचना के साथ मनोरंजन । मैंने इस शब्द की चर्चा सेज प्रकाशन (लॉस इंजिल्स) द्वारा प्रकाशित श्री दयाकृष्ण ठुस्सु की पुस्तक 'न्यूज एस एन्टरटेनमेंट, द राइज ऑफ इन्फोटेनमेंट' में पढ़ी थी । इसी पुस्तक में एक अध्याय का शीर्षक है – ''द बालीवुडाईजेशन ऑफ न्यूज'' अर्थात् खबर का बालीवुडीकरण । इन सभी संदर्भों से पश्चिमी मीडिया के समाचार के प्रति अंगभीर रूख को समझा जा सकता है ।

भारत में संचार क्रांति और टेलीविजन के उत्कर्ष काल में ही रामायण और महाभारत केन्द्रित टी.वी. धारावाहिकों ने एक नये समाज को गढ़ने की कोशिश की जो सांस्कृतिक चेतना के स्थान पर धार्मिक आग्रह में बदलने लगा । ये दोनों सिरियल डी कोडिंग के श्रेष्ठ उदाहरण है । आज हम इंडेक्स और डाटा स्टोर करने में लगे हैं । हायपर टेक्स्ट ही इलेक्ट्रानिक पाठ है, इसे उत्तर आधुनिक चिंतक जाक देरिदा ने हमें सबसे पहले बताया । बहुत से यूनिकोड और लाखों वेबसाईटों का जंगल आज मनुष्य के सामने खड़ा है । इंटरनेट ने दुनिया के समाजों में बिखरी और जकड़ी हुई वर्जनाओं और नैतिकताओं को तार–तार करके रख दिया है । व्यक्तिगत स्वतंत्रता के चरम के रूप में भारतीय समाज में सुप्रीम कोर्ट ने भी ''लिव–इन–रिलेशनशिप'' को मान्यता दी है । संचार क्रांति का बहुत बड़ा असर स्त्रियों पर पड़ा है । मीडिया के विज्ञापनों में स्त्री की मर्दवादी नजरियें में ऐसी छवि गढ़ी गई है कि वह विज्ञापन की दुनिया की बेताज मलिका बन चुकी है । मीडिया ने स्त्री और समाज को अपने अधिकारों के लिए जागरूक करने में भी बहुत बड़ी भूमिका निभाई है । मानव अधिकार एवं स्त्री सुरक्षा के लिए भी मीडिया कई दृष्टि से कारगर है । अनेक मुस्लिम राष्ट्रों की महिलाओं की जागृति इन्टरनेट के बदौलत हुई है । भारतीय संदर्भ में विज्ञापनों में स्त्री के साथ ही अब बाबा रामदेव और उनके उत्पाद भी नजर आते हैं । ये एक अलग किस्म का परिवर्तन है ।

इसी प्रसंग में यह भी देखना और समझना कम दिलचस्प नहीं है कि

टी.वी. चैनलों पर भारत की पारिवारिक मूल्य सत्ता और रिश्तों की आत्मीयता को भी विभिन्न धारावाहिकों में बेरहमी से कुचला जा रहा है । हमारे देश के स्त्री–पुरूष टी.वी. चैनलों की कहानी में न जाने कितने स्त्री–पुरूषों से प्रेम करते, विवाह करते और तलाक देते पाये जा सकते हैं । शानदार मकानों में रहने वाले पुरूष पात्र और सोने और डॉयमंड के गहनों से लदी–फदी और निरन्तर कलह में पारंगत स्त्रियां इन टी.वी सीरियलों के केन्द में होती है । भारत के गांव, मजदूर किसान और उनके जीवन से झांकती गरीबी के यथार्थ दर्शन जो प्रेमचंद और रेणु के उपन्यासों और कहानियों की दुनिया में हुआ करते थे, वे टी.वी. के इन धारावाहिकों से गायब हो चुके हैं । आज कट्टरवाद, पाखण्ड और अंधविश्वास को भी मीडिया द्वारा परोसा जा रहा है, क्या ये मीडिया का काम है ? यह भी बाजारवाद और भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया का ही हिस्सा है । हमारे राजनीतिक नेतृत्व, सामाजिक सरोकारों से जुड़े कर्णधार और नौकरशाहों के चिन्तन, मनन और भाषण से भी गरीबी और गरीबों का स्मरण होना प्रायः बन्द हो चुका है ।

आज भारत वैश्वीकृत महाविकास की दौड़ का सहयात्री बन चुका है । मनुष्य पर प्रायः हर युग में धर्म, राजनीति और समाज से जुड़ी सत्ताओं का दबाव रहा है । पहले राज्य केन्द्रित बाजार हुआ करता था अब बाजार केन्द्रित राज्य हो गये है । इन शक्तियों के अतिरिक्त बाजार और मीडिया भी नये शक्ति केन्द्र के रूप में उभरे हैं । हकीकत यह है कि बाजार ने मीडिया को खरीद लिया है । भारत का सारा मीडिया आज कारपोरेट घरानों के शिंकजे में हैं । आम नागरिक की भूमिका राजनीति और आम चुनाव के संदर्भ में एक मतदाता की, भूमण्डलीकृत बाजारवादी व्यवस्था में एक उपभोक्ता की, मीडिया द्वारा टेलीविजन पर परोसे गये कार्यक्रमों को देखने के लिए एक दर्शक की तथा धर्मगुरूओं की प्रायोजित प्रवचन सभाओं में एक श्रोता भर की रह गई है । यह हमारे समय की भीषण त्रासदी और विडम्बना है ।

जनतांत्रिक व्यवस्था में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्याय पालिका के बाद मीडिया को चौथा स्तम्भ माना गया है । जनतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए जनसंचार माध्यमों का दायित्व बढ़ने के साथ ही उनकी ऐतिहासिक भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता है। आज अभिव्यक्ति की आजदी के नाम पर मीडिया में स्वच्छंदता और उच्छृखंलता का अतिक्रमण हो रहा है । कई दिशाओं से मीडिया को नियंत्रित करने की आवाजें भी उठने लगी है । किसी भी सभ्य और विकसित समाज और जनतांत्रिक व्यवस्था में मीडिया की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करना कोई प्रशंसनीय कार्य नहीं है ।

लेकिन स्वतंत्रता के साथ सहिष्णुता और विवेक का होना भी जरूरी है ।

भूमण्डलीकृत बाजारवाद और उसके आकाओं ने मीडिया पर भी अपनी नकेल कसना शुरू कर दिया है । ब्रिटेन, अमेरिका जैसे राष्ट्रों में मीडिया की गैर जिम्मेदाराना भूमिका के प्रति गम्भीर आपत्ति दर्ज करते हुए उसे कटघरे में खड़ा करने की कोशिशें भी हुई है । आज बाजार केन्द्रित व्यवस्था एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने पूरे विश्व को अपने प्रभाव और दबाव में ले रखा है । जनतंत्र में मनुष्य की स्वतंत्रता ही सबसे बड़ा मूल्य और शक्ति है । इसके साथ ही अत्याचार, अन्याय, शोषण और दमन के विरूद्ध सशक्त प्रतिरोध कर आवाज बुलन्द करना साहित्य और मीडिया दोनों का ही दायित्व है । भूमण्डलीकरण की चुनौतियों के प्रवाह के बीच में से हमें भाषा, साहित्य और जनसंचार माध्यमों के मूलभूत तत्वों की रक्षा करनी पड़ेगी इसके साथ ही सांस्कृतिक प्रदूषण के खतरों से भी देश और समाज को बचाना होगा । भारत सारी शताब्दियों में एक साथ जीने वाला देश है । भारतीय मनीषियों का चिन्तन और हमारी सांस्कृतिक सहिष्णुता और उदारता ने राष्ट्र की इतिहास यात्रा में अनेक मोड़ और परिवर्तन देखें हैं हम वर्तमान दौर के संकटों से भी बेशक मुक्ति पा सकेगें ।

❐

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* **ISSN 0974 -1100**
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 62–68 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी एवं प्रभाव : एक विश्लेषण

डॉ. वीरेन्द्र चावरे

सूचना प्रौद्योगिकी (इन्फोर्मेशन टेक्नालॉजी) आंकडों की प्राप्ति, सूचना (इंफार्मेशन), संग्रह, सुरक्षा, परिवर्तन, आदान–प्रदान, अध्ययन, डिजाइन आदि कार्यो तथा इन कार्यों के निष्पादन के लिये आवश्यक कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं साफ्टवेयर अनुप्रयोगों से सम्बन्धित है । सूचना प्रौद्योगिकी कम्प्यूटर पर आधारित सूचना प्रणाली का आधार है । संचार क्रांति के फलस्वरूप अब इलेक्ट्रॉनिक संचार को भी सूचना प्रौद्योगिकी (इंफोर्मेशन एण्ड कम्युनिकेशन टेक्नालाजी) भी कहा जाता है । एक उद्योग के तौर पर यह एक उभरता हुआ क्षेत्र है । सूचना प्रौद्योगिकी वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास की संवाहक है । सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रभाव के कारण ही वर्तमान शताब्दी को प्रायः ''सूचना प्रौद्योगिकी शताब्दी'' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । विश्व के विभिन्न देशों में आर्थिक उत्पादकता और सामाजिक विकास पर ''सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी'' के प्रभाव का मूल्यांकन करने हेतु ''विश्व आर्थिक मंच (वर्ल्ड इकोनामीक फोरम) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय बिजनेस स्कूल ''इनसीड'' (आइ.एन.एस.इ.ए.डी) तथा कार्नेल यूनिवर्सिटी (न्यूयार्क) के सहयोग से वर्ष 2001 से ही वार्षिक आधार पर सूचना प्रौद्योगिकी रिपोर्ट जारी की जाती है । हाल ही में 2015 में जारी इस रिपोर्ट के नवीनतम् संस्करण में ''नेटवर्क तत्परता सूचकांक'' (नेटवर्क्ड रेडिनेस इण्डेक्स) के माध्यम से विश्व की 143 अर्थव्यवस्थाओं (जो कुल वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद के 98.4 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी है) की नेटवर्क तत्पर्ता की स्थिति का आकलन किया गया है ।

सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटक :–

कम्प्यूटर हार्डवेयर प्रौद्योगिकी – इसके अंतर्गत माइक्रो–कम्प्यूटर, सर्वर, बडे मेनफ्रेम कम्प्यूटर के साथ–साथ इनपुट, आउटपुट एवं संग्रह करने वाली युक्तियाँ (डिवाइस) आती है ।

कम्प्यूटर साफ्टवेयर प्रौद्योगिकी– इसके अन्तर्गत प्रचालन प्रणाली (आपरेटिंग सिस्टम), वेब ब्राउजर, डेटाबेस, प्रबंधन प्रणाली, सर्वर तथा व्यापारिक/वाणिज्यिक साफ्टवेयर आते हैं ।

दूरसंचार व नेटवर्क प्रौद्योगिकी– इसके अन्तर्गत दूरसंचार के माध्यम, प्रक्रमक (प्रोसेसर) तथा इंटरनेट से जुड़ने के लिए तार या बेतार पर आधारित साफ्टवेयर, नेटवर्क–सुरक्षा, सूचना का कूटन (क्रिप्टोग्राफी) आदि है ।

मानव संसाधन–तंत्र प्रशासक (सिस्टम एडमिनिस्ट्रेटर), नेटवर्क प्रशासक (नेटवर्क एडमिनिस्ट्रेटर) आदि ।

सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व और प्रभाव–

सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा अर्थतंत्र (सर्विस इकोनॉमी) का आधार है । पिछड़े देशों के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए सूचना प्रौद्योगिकी एक सम्यक तकनीकी है । गरीब जनता को सूचना–सम्पन्न बनाकर ही निर्धनता का उन्मूलन किया जा सकता है । सूचना–सम्पन्नता से सशक्तिकरण होता है । सूचना तकनीकी, प्रशासन और सरकार में पारदर्शिता लाती है, इससे भ्रष्टाचार को कम करने में सहायता मिलती है । सूचना तकनीक का प्रयोग योजना बनाने, नीति निर्धारण तथा निर्णय लेने में होता है । यह नये रोजगारों का सृजन करती है ।

सूचना प्रौद्योगिकी ने पूरी धरती को एक गांव बना दिया है । इसने विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को जोड़कर एक वैश्विक अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है । यह नवींन अर्थव्यवस्था अधिकारिक रूप से सूचना के रचनात्मक व्यवस्था व वितरण पर निर्भर है । इसके कारण व्यापार और वाणिज्य में सूचना का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है । इसलिए इस अर्थव्यवस्था को सूचना अर्थव्यवस्था (इन्फोर्मेशन इकोनॉमी) या ज्ञान अर्थव्यवस्था (नॉलेज इकोनॉमी) भी कहने लगे हैं । वस्तुओं के उत्पादन पर आधारित परम्परागत अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ती है और सूचना पर आधारित सेवा अर्थव्यवस्था निरन्तर आगे बढ़ती जा रही है ।

सूचना क्रांति से समाज के संपूर्ण कार्यकलाप प्रभावित हुए हैं– धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, प्रशासन, सरकार, उद्योग, अनुसंधान व विकास, संगठन, प्रचार आदि सब के सब क्षेत्रों में कायापलट हो गया है । आज का समाज सूचना समाज कहलाने लगा है ।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी और क्षेत्र में महत्वपूर्ण पहल–

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का विकास पिछले वर्षों में बड़ी तेजी से हुआ है । सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत में कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉ है । उनमें से प्रमुख है – इस क्षेत्र की प्रमुख भारतीय कम्पनियों के नाम है– इंफोसिस, टी.सी.एस., विप्रो, सत्यम । बहुराष्ट्रीय– इंटेल, माइक्रोसॉफ्ट, टी.आई., गूगल, याहू, सैप लैब्स इंडिया की पितृ संस्था ''सेप ए जी'' है जो जर्मनी में स्थित है, ऑरेकल ।

वर्तमान (2009) में भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का सकल घरेलू उत्पाद में 5.19 प्रतिशत हिस्सेदारी है । इसमें लगभग 25 लाख लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से काम कर रहे हैं जिससे यह सर्वाधिक रोजगार प्रदान करने वाले क्षेत्रों में से एक बन गया है ।

भारत की वर्तमान तरक्की में आईटी का बहुत बड़ा योगदान है । पिछले 5 सालों (2004–09) में सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि के बढ़ोत्तरी के प्रतिशत में 6 प्रतिशत योगदान आईटी का ही है । पिछले 10 वर्षों में देश में जो रोजगार उपलब्ध हुआ है, उसका 40 प्रतिशत आईटी ने उपलब्ध कराया है ।

भौगोलिक सीमाओं को तोड़ते हुए अलग–अलग देशों में उत्पाद, उत्पाद इकाइयाँ बनाना, हर देश में उपलब्ध श्रेष्ठ संसाधन का उपयोग करना, विभिन्न देशों में काम करते हुए पूरे 24 घंटे अपने ग्राहक के लिए उपलब्ध रहना और ऐसे डेटा सेंटर बनाना जो कहीं से भी इस्तेमाल किए जा सकें, ये कुछ ऐसे प्रयोग थे जो हमारे लिए काफी कारगर साबित हुए । अब सारी दुनिया इन्हें अपना रही है ।

भारत का वर्तमान परिदृश्य एवं भविष्य–

वर्ष 2015 में जारी की गयी रिपोर्ट के नवीनतम् संस्करण में रिपोर्ट के अनुसार सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने के संदर्भ में विकसित अर्थव्यवस्थाओं का प्रदर्शन विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में बेहतर रहा है । रिपोर्ट के अनुसार भारत की लगभग एक तिहाई जनसंख्या के पास मोबाईल फोन है जब की देश की केवल 15 प्रतिशत जनसंख्या ही इंटरनेट का प्रयोग करती है । उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष 2014 में 148 देशों में 83 वें स्थान पर था ।

वर्तमान समय 2016–17 में देखा जाये तो विभिन्न मोबाईल कम्पनियों द्वारा देश के नागरिकों को फ्री इंटरनेट सेवा प्रदान करने के बाद भारत विश्व में इन्टरनेट का अधिकतम उपयोग करने वाले देशों की सूची में शामिल हो गया है । सूचना के महत्व के साथ सूचना की सुरक्षा का महत्व भी बढ़ा है । सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े कार्यो में रोजगार के अवसर बढेगें, विशेष रूप से सूचना, सुरक्षा एवं सर्वर के विशेषज्ञों की मांग बढ़ेगी ।

रेलवे टिकट एवं आरक्षण का कम्प्यूटरीकरण, बैंको का कम्प्यूटरीकरण एवं एटीएम की सुविधा, इंटरनेट से रेल टिकट, हवाई टिकट का आरक्षण, इंटरनेट से एफआईआर, न्यायालयों के निर्णय ऑनलाईन उपलब्ध कराये जा रहे हैं । किसानों के भूमि रेकार्डों का कम्प्यूटरीकरण, इंजीनियरिंग प्रवेश के लिए ऑनालाइन आवेदन एवं ऑनलाइन काउंसलिंग, ऑनलाइन परिक्षाऐं कई विभागों के टेण्डर ऑनलाइन भरे जा रहे हैं । पासपोर्ट, गाड़ी चलाने के लाइसेंस आदि भी ऑनलाइन भरे जा रहे हैं । शिकायते ऑनलाइन की जा सकती है । सभी विभागों में बहुत सारी जानकारी ऑनलाइन उपलब्ध है । (सूचना का अधिकार के तहत भी बहुत सी जानकारी ऑनलाइन दी जा रही है ।) आयकर की फाइलिंग ऑनलाइन की जा सकती है । ईमेल भेजना (किसी प्रकार का फाइल को तुरंत भेजना) अब इन्हें भारत अपना रहा है ।

भारत के लिए बहुत अच्छी खबर है । भारतीय प्रतिभाओं की नित नई खोज से विकसित सॉफ्टवेयर और कम्प्यूटर सेवा उद्योग से भारतीय अर्थव्यवस्था के समृद्धशाली संसाधनों और उनसे आय के स्त्रोतों में तेजी से बढ़ोत्तरी सामने आ रही है । यह क्षेत्र तीस फीसदी सालाना से भी ज्यादा तेज दर से बढ़ रहा है । इस उद्योग को सन् 2004 में करीब पच्चीस बिलियन अमेरिकी डालर से अधिक का राजस्व मिला जिसमें करीब सत्रह से बीस बिलियन डालर की आय अकेले निर्यात से प्राप्त हुई । भारतीयों को यह सुनकर कितना सुखद लगेगा कि इस उद्योग में एक मिलियन से भी अधिक लोग रोजगार पा रहे हैं जबकि 2.5 मिलियन से ज्यादा लोग अप्रत्यक्ष रूप से इससे जुड़े हैं ।

इस प्रकार भारत के सकल घरेलू उत्पाद में इस उद्योग का 3 फिसदी से भी ज्यादा योगदान है जबकि कुल निर्यात का बीस प्रतिशत आईटी उद्योग से आता है । बुरी खबर इसलिए है कि जिन प्रतिभाओं से भारत को लाभ उठाना था, वे दूसरों की प्रगति का जरिया बन रही है ।

एक आर्थिक रिपोर्ट से पता चलता है कि इसका ब्रिटेन जैसे देशों को बहुत फायदा हुआ है । इन फायदों में कम्प्यूटर सेवाओं की भारतीय उप महाद्वीप में आउटसोर्सिंग से होने वाली बचत भी शामिल है ।

भारतीय साफ्टवेयर कंपनिया विदेशों में होने वाले निवेश की अगुवाई करती रही है । जिससे इनमें ज्यादातर निवेश विलय और अधिग्रहण के जरिए होते हैं । देखा जाए तो भारतीय आईटी उद्योग सही मायने में देश का पहला वैश्विक व्यवसाय बनने की दिशा में बढ़ रहा है । ब्रिटेन में प्रमुख कम्प्यूटर प्रदाता कम्पनी के रूप में भारत की टाटा कंसलटेंसी को ही ले लीजिए जिसमें इस क्षेत्र में बड़ा नाम कमाया है । सूचना प्रौद्योगिकी के लचीले व्यवसायिक नियमों के कारण आज कई कंपनिया ज्यादा कुशलतापूर्वक अपना काम कर रही है । इसमें टाटा ने दुनिया की दस बड़ी कम्पनियों में अपने को स्थापित कर लिया है । तीस वर्ष से टाटा कंसलटेंसी भारत और ब्रिटेन के बीच होने वाले व्यवसाय के अनुरूप परितर्वन की प्रक्रिया अपनाए हुए है ।

भारतीय प्रतिभाओं की भारी मांग ने पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारत को एशिया प्रशांत क्षेत्र में सबसे तेज गति से विकास करने वाला सूचना प्रौद्योगिकी बाजार बना दिया है । भारतीय साफ्टवेयर और आईटीईएस उद्योग का पिछले छह वर्ष के दौरान करीब 30 प्रतिशत के सीएजीआर की दर से विकास सामने आया है । उपभोक्ताओं की उभरती आवश्यकताओं का प्रबंधन बेहतर रूप से करने के लिए बहुउद्देशीय सेवा प्रदायी क्षमताओं के लाभ और कुछ नई सेवाओं की प्रदायगी एक छोर से दूसरे छोर तक करने की भारतीय प्रतिभाओं की क्षमता को स्वीकार करते हुए भारतीय कंपनियॉ हरित क्षेत्र प्रयासों क्रास–बार्डर एमएण्डए, स्थानीय उद्योगों के साथ भागीदारी और गठबंधन के माध्यम से अपनी सेवाऐं बढ़ा रही है ।

भारत में माइक्रोसाफ्ट, ओरेकल, एसएपी जैसे साफ्टवेयर उत्पादों की बड़ी कंपनियों ने अपने विकास केन्द्र स्थापित किये हैं । सूचना सुरक्षा के क्षेत्र में भारत का रिकार्ड अधिकांश देशों से बेहतर माना जा रहा है । भारत के प्राधिकारी देश में सूचना सुरक्षा के परिवेश को ओर मजबूत करने पर गहन रूप से बल दे रहे हैं । इस दिशा में किये जा रहें प्रयासों में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम में संशोधन, समीक्षा, उद्योगों के प्रबंध वर्गों के बीच आपसी सम्पर्क में वृद्धि के बारे में ज ागरूकता बढ़ाई जा रही है । भारत की अधिकांश कंपनियों ने आईएसओ, सीएमएम, सिक्स सिगमा जैसे अंतर्राष्ट्रीय मानकों के साथ अपनी आंतरिक प्रक्रियाओं और व्यवहारों को पहले ही शामिल कर लिया है ।

जिस कारण भारत को एक भारोसेमंद सोर्सिंग गंतव्य के रूप में स्थापित करने में सहायता मिली है ।

एक अधिकृत रिपोर्ट के अनुसार भारत की बड़ी कम्पनियों ने 500 से ज्यादा गुणवत्ता प्रमाण–पत्र प्राप्त किये हैं जो विश्व के किसी भी देश से अधिक है । दूर संचार विधुत निर्माण कार्य, सुविधा प्रबंध, सूचना प्रौद्योगिकी, परिवहन, खानपान और अन्य सेवाओं सहित वेंडरों पर इसका असर दिखाई देने लगा है ।

भारत सरकार ने अपने कार्यक्रम में मूलभूत गुणवत्ता सुधार को प्राथमिकता दी है और इस संदर्भ में साधारण जनता के जीवन से जुड़े क्षेत्रों में ई–शासन को बड़े पैमाने पर बढ़ावा देने का प्रस्ताव किया है । इसके अनुसार एक राष्ट्रीय ई–शासन योजना तैयार की गई है जिसमें यह विचार मुख्य रूप से प्रस्तुत किया गया है कि इसका उद्देश्य साधारण जनता को सभी सरकारी सेवाऐं उसी के इलाके में आजीवन एकल बिन्दु केन्द्र के माध्यम से उपलब्ध होगी ।

साधारण जनता की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए ऐसी सेवाओं के लिए कम लागत पर कुशलता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता सुनिश्चित होनी जरूरी है । जिस प्रकार इसके घटक राज्यव्यापी एरिया नेटवर्क सामान्य सेवा केन्द्र, क्षमता निर्माण, इंटरनेट संवर्द्धन, रूट सरवरों की स्थापना, मीडिया लैब एशिया, सूचना, अनुसंधान एवं विकास में जैसा खुब काम चल रहा है उसके लिए यह बहुत जरूरी है और यह इस बात का प्रमाण कहा जा सकता है कि आईटी के क्षेत्र में भारत ने जो प्रगति की है, उसका संबंध सीधे प्रतिभाओं के उच्च स्तरीय प्रयोग से है ।

अमरीका और यूरोप के बाद जापानी कम्पनियां भी भारतीय इंजीनियरों को अपनी और आकर्षित कर रही हैं । जापान में तो इंजीनियरों की संख्या में भारी कमी है इसलिए जापान ने इसे पूरा करने के लिए भारत और वियतनाम जैसे देशों के इंजीनियरों को अपने यहां शानदार अवसर दिये हैं । जापान की डिजीटल टेक्नॉलाजी के लिए उसे भारी संख्या में इंजीनियरों की आवश्यकता है यह अचरज की बात है कि जापान में तकनीकी विषयों की प्रतिभाओं में अच्छी खासी कमी आई है । विशेषज्ञ मानते है कि इसका कारण जापान में अत्यधिक आराम पसंद होना और गुढ़ विषयों की माथापच्ची से बचना है इसलिए यहां के छात्र विज्ञान से किनारा करते पाए गए हैं । जापान में यू तो

भारतीय इंजीनियरों के लिए भाषा की एक बड़ी समस्या है लेकिन पता चला है कि जापान की सरकार ने इस कमी को दूर करने के लिए भी अपने यहां एशियन टेलेंट फण्ड का निर्माण किया है । जापान सरकार ने अपने यहां की प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देने में कोई कमी नहीं छोड़ी है लेकिन यहां की प्रतिभाओं का जापान तकनीकी क्षेत्र में पलायन नहीं रोक पा रहा है ।

भारत में मेहनतकश लोगों की कमी नहीं है । यहां की प्रतिभाऐं जिस क्षेत्र में जुटती है उसमें वह काफी कमाल दिखाती है । इसे अमरीका, जापान, ब्रिटेन, रूस जैसे देशों ने माना है । भारत की औद्योगिक राजघराने की अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियों ने भारतीय प्रतिभाओं को काफी आकर्षित किया है । इन कंपनियों ने भारतीय प्रतिभाओं को विदेशों में ही अवसर देने के रास्ते खोल दिए हैं जिससे विदेशी कंपनियों में भारतीय प्रतिभाओं का न केवल महत्व बढ़ गया है अपितु उन्हें दिया जाने वाला पैकेज भी भारी भरकम हो गया है ।

इस कारण इस क्षेत्र में प्रतिभाओं का जितना प्रवेश दिखायी पड़ रहा है, उतना भारत की अखिल भारतीय सेवाओं में भी नहीं दिखाता है । यही कारण है कि आज पूरी दुनिया की नजर भारत की तरफ है । भारत के कुछ अशांत क्षेत्रों में विघटनकारी गतिविधियों और आरक्षण जैसी मांगों का भी सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार पर कोई विपरीत असर नहीं दिखायी पड़ता है । विश्व समुदाय मानता है कि भारत में आईटी के क्षेत्र में प्रतिभाओं की अद्‌भुत खोज हुई है । एक समय बाद भारतीय प्रतिभाऐं दुनिया के लिए बड़ी मजबूरी बन जाएगी, क्योंकि भारत के पास यही एक दौलत है, जिसके बूते पर प्रतिभाओं के क्षेत्र में भी सदियों से उसका रूतबा कायम है ।

❐

सन्दर्भ

1. *The most Important Effects of information Tchnology on the Society, 3 April 2011, at, http://hitchplatform.blogspot.in/2011/04 most-important-effects-of-information.html*
2. *T Collins Longan, What is the impect of information technology on society ? jan,13,2016 at, https://www.quora.com/ What-is-the-impact-of-information-technology-on-society*
3. *Rashmi Rajshekhar, Economic issue-Growth and Impact of the IT industry on the Indian Economy, 7, August, 2010 at, http://The viewspaper.net/economic-issue-growth-and-impact-of-the-it-industry-on-the-indian-economy/*
4. *The Global Information Technology Report 2016 at, https://www. weforum.org/ reports/the-global-information-technology-report-2016*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* **ISSN 0974 -1100**
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 69–71 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का जनजातीय समाज व संस्कृति पर प्रभाव

सुनीता बघेले

भारत विविधताओं का देश है । यह सच्चे अर्थों में समुदायों का एक समुदाय है । इन समुदायों में से एक है– जनजातीय समुदाय जिनकी अपनी जीवन शैली है । इनके विशिष्ट रीति रीवाज एवं संस्कृति की अपनी पहचान है । ये लोग सदियों से अलगाव की स्थितियों में राष्ट्र की मुख्यधारा से पृथक रहे हैं । इन अलगाव की स्थितियों ने उन्हें असमानता, शोषण एवं निम्न स्थिति का जीवन जीने पर विवश किया है ।

शताब्दियों से शोषण, अन्याय और मुख्य सामाजिक सांस्कृतिक जीवन धारा से पृथकता के कारण जनजातीय समाज के सदस्यों में दासता की मनोवृत्ति का विकास हुआ है । इस समाज पर पड़ने वाला सामाजिक आर्थिक संरचना का दबाव इतना अधिक प्रभावशाली रहा है कि समाज के सदस्यों ने अपनी निम्न स्थिति को स्वीकार करना अधिक उचित माना है । जनजातीय समाज ने परम्परागत सामाजिक व्यवस्था की असमानता और शौषण को अपने भाग्य और जीवन चक्र का एक आवश्यक अंग मानकर व्यवस्था के प्रति किसी भी प्रकार का आक्रोश या प्रतिक्रिया व्यक्त करने की अपेक्षा मौन स्वीकृति को अधिक श्रेयस्कर माना है ।

आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी आज मानव के स्वभाव का अभिन्न भाग बन गया है । मनुष्य द्वारा शब्द संगीत, हाव–भाव इत्यादि रूपों से होने वली सम्प्रेक्षण प्रक्रियाऐं संचार का अंग है, जिसके द्वारा मानव के सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण एवं विकास होता है । संचार के बिना मानव के सामाजिक जीवन की कल्पना नहीं कर सकते हैं । संचार ही मानव समाज की संचालन प्रक्रिया को सम्भव बनाता है ।

संचार को अंग्रेजी भाषा में कम्यूनिकेशन कहते हैं जो लेटिन भाषा के 'कम्यूनिस' नामक शब्द से उदघृत हुआ है जिसका अर्थ किसी वस्तु या विषय का सभी के लिए साझेदारी करना है । संचार ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों एवं मनोवृत्तियों में बराबर का साझेदार होता है ये सभी विधियां संचार है जिनके माध्यम से वह व्यक्ति को प्रभावित करता है ।

सामान्य रूप से संचार मानवीय समाज की संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसमें उद्देश्यपूर्ण एवं सार्थक अनुभवों, व्यवहारों एवं आवश्यकताओं का परस्पर आदान–प्रदान किया जाता है, इसमें निश्चित लक्ष्य निहित होता है । यह व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है इसमें समता भागीदारी की सूचना एवं सम्प्रेषण व अन्य प्रक्रियाऐं भी रहती है । इस प्रकार सूचना सम्प्रेषण एवं श्रोता के मध्य सन्देश एवं सूचना से सम्बद्ध क्रिया एवं प्रक्रिया का पुन्ज है । सूचना के अभाव में व्यक्ति का विकास सीमित होगा एवं सूचना के अभाव में चराचर सृष्टि का विकास भी असंभव है ।

सूचना प्रौद्योगिकी के विषय में यह भी कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा माध्यम है जिसने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है । तार–बेतार, दूरदर्शन, रेडियों, कम्प्यूटर, मोबाईल फोन को आधुनिक फोन की संज्ञा देना चाहें तो इनको इस नाम से विभूषित किया जा सकता है एवं दुनिया के किसी भी छोर की खबर पलभर में ली जा सकती है । व्यक्ति का राजनीति ज्ञान शून्य में विकसित होने वाली प्रक्रिया नहीं हैं बल्कि इसका विकास सामाजिक अन्तःक्रिया और विचारों के आदान–प्रदान के द्वारा होता है । यह ज्ञानात्मक बोध की एक जटिल प्रक्रिया है जो परिवार, शिक्षण संस्था, मित्र समूह, कार्यस्थल, संचार के साधन इत्यादि के पारस्परिक अन्तःक्रिया के द्वारा प्रभावित और विकसित होती है । कभी–कभी विचारों और सूचनाओं का प्रसारण कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा होता है जो समूह विशेष में अपने विशिष्ट ज्ञान के कारण विचार नेतृत्व की भूमिका का निर्वाह करते हैं । आधुनिक समाज में राजनीति व्यवस्था के आधारभूत तथ्यों के ज्ञान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिकरण समाचार पत्र, रेडियों, टेलीविजन है । व्यक्ति इन साधनों के द्वारा अपने राजनीतिक व्यवस्था के संबंध में आवश्यक सूचना सामग्री प्राप्त करता है ।

आज सूचना प्रौद्योगिकी ने राजनीति सजगता से लेकर शिक्षण व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था इत्यादि में भरपूर योगदान दिया है । अविकसित समाजों के राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सूचना सम्प्रेक्षण के साधानों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान पाया गया है ।

इन्टरनेट एक विश्वव्यापी प्रसारण क्षमता युक्त कम्प्यूटर पर संग्रहित सूचना वितरित करने तथा विभिन्न कम्प्यूटर उपयोगकर्ताओं के मध्य सहयोग एवं सम्पर्क का माध्यम है जिसमें बिना किसी धर्म, देश व भेदभाव के सूचना आदान प्रदान करना संभव है । इन्टरनेट का उपयोग आप कम्प्यूटर के द्वारा कहीं भी, कभी भी और किसी भी समय कर सकते हैं । इन्टरनेट द्वारा जिन कार्यों को किया जा सकता है उनमें से कुछ इस प्रकार है ।

विश्वभर में सूचनाओं का आदान–प्रदान करना, खरीददारी करना, संगीत सुनना, फिल्म देखना, किताबें पढ़ना, शैक्षणिक सामग्री खोजना, क्रिकेट, फूटबाल आदि मैंचों का सीधा प्रसारण देखना आदि ।

जनमाध्यमों के अत्यधिक विकास ने विचार के क्षेत्रों में जो परिवर्तन किया है वह यह कि सूचना वर्तमान समाजों के केन्द्र में मौजूद है । बिल्कुल उसी तरह से जिस तरह पूंजीवादी समाजों के केन्द्र में पूंजी है । जैसे कहा गया कि पूंजीवाद में पूंजी पर जिसका अधिकार होता है उसकी का समाज पर शासन होता है, अब यह कहा जा सकता है कि पूंजी का स्थान सूचना ने ले लिया है । अब जिसका सूचना पर अधिकार होगा उसी का समाज पर शासन होगा । इस प्रकार आज का समाज पूंजीवादी समाज न होकर सूचना समाज है ।

आज जनजातीय समाज भी सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों से अछूता नहीं रहा है इस समाज में भी आज नवयुवक, युवतियाँ सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों का प्रयोग कर रहे हैं । जैसे मोबाईल फोन, कम्प्यूटर, टेलीविजन, फिल्म, ईमेल आदि जिसके कारण उनके रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, पहनावें आदि में परिवर्तन आ रहा है । साथ ही उसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यक्तित्व में बदलाव देखने को मिल रहा है । निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि आज सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों ने विकसित समाज के साथ–साथ अविकसित समाज जैस जनजातीय समाज को भी प्रभावित किया है ।

❒

सन्दर्भ

1 *डॉ. एस.एन.चौधरी, दलित एण्ड ट्रायबल लीडरशीप इन पंचायतस, कान्सेप्ट पब्लिशिंग, नईदिल्ली, 2004*

2 *डॉ. आर.डी. मौर्य, ट्रायबल एण्ड पंचायतस् ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया, बी.आर. पब्लिशिंग, नईदिल्ली, 2009*

3 *कुप्पूस्वामीनी, कम्यूनिकेशन एण्ड सोशल डेवलपमेंट इन इण्डिया, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नईदिल्ली, 1976*

4 *सुरेश अग्रवाल, जनसंचार माध्यम, नमन प्रकाशन, नईदिल्ली 2005*

5 *एस.सी. शर्मा, मीडिया कम्यूनिकेशन एण्ड डवलपमेंट, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1977*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 72–75 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी और ग्रामीण विकास

डॉ. श्रीमती वीणा सिंह

सूचना प्रौद्योगिकी एक वृहद् अवधारणा है, जिसमें सूचना प्रक्रिया और उसके प्रबन्ध सम्बन्धी सभी पहलू शामिल है । आज कम्प्यूटर, टेलीफोन, इंटरनेट इत्यादि सूचना प्रौद्योगिकी का आधार स्तम्भ है । सूचना प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन के सभी पक्षों सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, धार्मिक, स्वास्थ्य इत्यादि को प्रभावित किया है । इसने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अधिक से अधिक मानव के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है जो राष्ट्र, समाज या सूचना प्रौद्योगिकी की अहमियत को समझ कर इसका उपयोग कर रहे हैं, वे तेजी से प्रगति के पथ पर अग्रसर है और जो इसके गुर नहीं समझ रहे हैं, वे काफी पिछड़ते जा रहे हैं । सूचना प्रौद्योगिकी किसी भी समाज के विकास पथ का निर्देशक साबित हो रहा है । इसलिए सूचना प्रौद्योगिकी को विकास दूत भी कहा जा सकता है । आज समाज के ढांचे एवं क्रियाकलाप में व्यापक अन्तर दृष्टिगोचर हो रहे हैं । आज ई–शिक्षा, ई–प्रशासन, ई–वाणिज्य आदि विभन्न क्षेत्रों में वृहद् बदलाव हुआ है ।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पिछले लगभग दो दशाकों में भारत ने अपने श्रममेघा के बल पर ऐतिहासिक उपलब्धियाँ हांसिल की है। आज इंटरनेट कम्प्यूटर, मोबाईल टेलीफोन, ई–मेल, केबल टीवी इत्यादि हमारे जीवन के आवश्यक अंग बन गये हैं । आधुनिकतम् मल्टीमीडिया कम्प्यूटर ने सूचना प्रौद्योगिकी को विकसित तथा सर्वसुलभ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है ।

भारत गॉवों का देश है । भारत की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गॉवों में निवास करती है । कुल मिलाकर भारत की तस्वीर गॉवों पर निर्भर करती है । भारत का विकास ग्रामीण विकास के साथ ही संभव है । अतः भारत को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में शुमार होने के लिए गॉवों को विकसित करना अनिवार्य है । भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिये अनेक नीतियाँ एवं योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है । जिससे बदलाव परिलक्षित हो रहे हैं । गॉवों के विकास के लिए किए जा रहें अनेक प्रयासों में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान सबसे अहम है । आज सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से गॉव सम्पूर्ण दुनियॉ से जुड गया है । दुनियॉ की पल–पल की खबरे एवं जानकारी से ग्रामीणजन भी रूबरू हो रहे हैं ।

भारत के सुदूर इलाके का एक गॉव टूटी सड़क, बिजली का कोई नामोनिशान नहीं, अशुद्ध जल, मीलों दूर डॉक्टर, कोसों दूर स्कूल, बाजार का अता–पता नहीं । अब इसी गॉव की बदली तस्वीर को निहारे, पक्की सड़क है । बाजार पहूँचने का साधन उपलब्ध है । एक किसान को अपना अनाज या उत्पाद बाजार में बेचना है । वह गॉव में ही पता लगा लेता है कि उसके अनाज या उत्पादन का उस दिन बाजार कीमत क्या है ? तथा किस मंडी में उसे ज्यादा कीमत मिलेगी ? शाम होते ही अचानक किसी की तबीयत खराब हो जाती है । क्या किया जाए ? हास्पिटल/डाक्टर तो बहुत दूर है । परन्तु वीडियों कान्फ्रेंसिंग है ना । बस डॉक्टर साहब को गॉव से ही हाल बताना है, डॉक्टर साहब बाहर से ही इलाज बता देगें । किसी ग्रामीण को दूर बाहर में बैठे अपने लाडली/लाडले से बात करनी है । कोई मुश्किल नहीं, गाँव में ही साइबर कैफै है, वहॉ जाकर बात तो क्या वीडियों कांफ्रेसिंग या वेब कैमरा के माध्यम से उसकी शक्ल/सूरत भी देख पाएगा । कोई पसंद का सामन खरीदना हो गाँव में घर बैठे ही ऑनलाइन किसी भी कम्पनी का कोई उत्पादन खरीद सकता है । किसी ग्रामीण को शिक्षा सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करनी है । कोई मुश्किल नहीं है । शिक्षा संस्थान में प्रवेश, परीक्षा इत्यादि इंटरनेट के माध्यम से ऑनलाइन कर सकता है । नौकरियों की जानकारी प्राप्त कर सकता है । दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से देशी–विदेशी शिक्षा संस्थान व विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण कर सकता है । आज यह कल्पना नहीं बल्कि हकीकत में फलीभूत होती जा रही है । अब मंजिल दूर नहीं है । सूचना प्रौद्योगिकी के गाँवों की ओर बढ़ते कदम इस कल्पना को साकार कर रहा है । अब ग्रामीण भी दुनिया को मुठ्ठी में करने जा रहे हैं । इसका श्रेय सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति को है ।

सूचना प्रौद्योगिकी के अनेक माध्यम एवं कार्यक्रम है, जो व्यक्ति को सीधे विकास के पथ से जोड़ते हैं । जिससे ग्रामीण घर बैठे किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त कर सकते हैं । आज ग्रामीणों, मेहनतकस किसानों एवं कामगारों को सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से सूचना प्राप्त कराने के विभिन्न उपाय एवं कार्यक्रम है, जो ग्रामीणों को उनके कार्यों में सुगमता लाने तथा विकासोंन्मुख करने में सहायक साबित हो रहे हैं । ग्रामीण विकास में सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न प्रमुख कार्यक्रमों एवं माध्यमों की व्याख्या निम्न रूप में किया जा सकता है ।

किसान कॉल सेन्टर – किसान कॉल सेन्टर बदलते भारत की नई तस्वीर पेश करते हैं । केन्द्रीय कृषि मंत्रालय तथा टेली कम्युनिकेशन कंसल्टेंट्स इंडिया लि. (टीसीआईएल) के साझा प्रयासों से जनवरी 2004 में इसकी शुरूआत की गई है । इसका मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, मत्स्यपालन एवं पशुपालन सम्बन्धी नई–नई जानकारी के साथ–साथ कृषि सम्बन्धी समस्याओं का हल किसानों को बताना है । भारत के किसी भी कौने का किसान टोल फ्री नम्बर 1551 पर फोन कर अपनी समस्या का हल पा सकता है । यह सभी भाषाओं में उपलब्ध है ।

ई–प्रशासन – ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी का सबसे प्रमुख लाभ ई–प्रशासन है । इंटरनेट की पहुँच से गाँवों में भी ई–प्रशासन से सरकार और ग्रामीणों के बीच शनैःशनैः सीधा सम्बन्ध कायम होने लगा है । सूचना प्रौद्योगिकी का प्रसार एवं विकास होने से ग्रामीणों को अपने भूमि संबंधी रिकार्ड, पानी, बिजली, आवास सम्बन्धी आवेदन पत्र, प्रमाण पत्र और भुगतान इत्यादि गाँव से ही घर बैठे प्राप्त होने लगे हैं, जिससे ग्रामीणों को बिचौलियों से मुक्ति मिलती जा रही है । इन सब कार्यों के लिये किराया खर्च करके बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है और आगे भी नहीं होगी ।

ई–चौपाल – ई–चौपाल ग्रामीण भारत की तकदीर व तस्वीर बदलने में काफी कारगर साबित हो रही है । ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी स्थापना केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं निजी कम्पनियों के द्वारा की जा रही है । इसमें आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से ग्रामीण इंटरनेट के माध्मय से ऑन लाईन होकर कृषि की नई तकनीक अपनाने, फसलों के उत्पादन बढ़ाने, उन्नत किस्म के बीज, कीटनाशक दवाओं, उर्वरकों, फसलों के रोग व बीमारियों से निदान, मंडी, पशुधन, जल संरक्षण, शिक्षा संबंधी जानकारी प्राप्त करने लगे हैं । इसके अतिरिक्त अन्य जरूरत की जानकारी भी ई–चौपाल से पलक झपकते ही प्राप्त कर सकते हैं ।

आम सुविधा केन्द्र (सीएससी) – आज ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से सरकार द्वारा गाँवों में ही तमाम संचार सुविधाओं को एक ही स्थान पर उपलब्ध कराया जा रहा है । इसके तहत ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग एक लाख से अधिक आम सूचना केन्द्र स्थापित किये गये हैं । जिसे सार्वजनिक निजी भागीदारी (पीपीपी) फार्मूले के अन्तर्गत स्थापित किया जा रहा है । आम सुविधा केन्द्रों पर ग्रामीण तथा किसानों को कृषि, मंडी, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य मूलभूत जानकारियॉ सुलभ हो रही है । इससे ग्रामीण क्षेत्र का मानचित्र बदल रहा है ।

टेलि मेडिसिन – टेली मेडिसिन सूचना प्रौद्योगिकी का प्रतिफल है । इसकी शुरूआत 2001 में इसरों (ISRO) ने अंतरिक्ष आधारित टेली मेडिसिन सिस्टम की स्थापना कर की थी । टेली मेडिसिन की मदद से शहर में बैठे डाक्टर दूर–दराज में बैठे मरीजों से बात कर उनकी समस्याओं एवं आशंकाओंका निवारण करता है । आंध्रप्रदेश का एक छोटा–सा गाँव अरागुंडा देश का ऐसा पहला गाँव है जहाँ सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम के जरिए इलाज की शुरूआत हुई । रोबोटिक्स एवं संचार की सहायता से डॉक्टर दूर बैठे ही शल्य क्रियाओं को सम्पन्न कर रहे हैं । विश्व में कहीं भी किसी भी बिमारी की नयी दवा के अविष्कार की जानकारी इसके माध्यम से तत्काल ग्रामीण लोगों तक पहूँच रही है ।

ई–शिक्षा – ई–शिक्षा के माध्यम से ग्रामीणों को शिक्षा सम्बन्धी समस्त जानकारी गाँवों में ही प्राप्त हो रही है । दूरस्थ शिक्षा का प्रसार प्रचार सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से ग्रामीण लोगों तक किया जा रहा है । आज ग्रामीण क्षेत्र में बैठे विद्यार्थी शिक्षण संस्थान या महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में ऑनलाईन प्रवेश ले सकता है एवं ले रहे हैं । परीक्षा फार्म भरना एवं परीक्षा भी ऑनलाईन हो रही है । ई–लाइब्रेरी के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र में किसी भी देशी–विदेशी पुस्तकालय से जुड़ा जा सकता है ।

निष्कर्षतः आज सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से ग्रामीण क्षेत्र विकास की ओर अग्रसर है । ग्रामीणों में जागरूकता बढ़ी है । सूचना प्रौद्योगिकी ने हाल में ही काफी बुलन्दियों को छुआ है । प्रारंभ में यह प्रौद्योगिकी शहरों में आस–पास केन्द्रीत थी । परन्तु आज इसका विस्तार सुदूर तक गाँवों में होता जा रहा है । गाँव बदल रहे हैं । आज सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से ग्रामीण किसान कॉल सेन्टर, ई–प्रशासन, ई–चौपाल, आम सुविधा केन्द्र, टेली मेडिसीन, ई–शिक्षा इत्यादि के माध्यम से पलक झपकते ही सारी दुनिया से सम्पर्क स्थापित कर रहा है । जानकारी प्राप्त कर जागरूक हो रहे हैं । विकास की ओर उन्मुख हो रहे हैं । आज सूचना प्रौद्योगिकी मानव जीवन का अहम हिस्सा बन चुकी है । जिसके बिना हम किसी भी प्रकार के विकास की कल्पना नहीं कर सकते हैं ।

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* **ISSN 0974 -1100**
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 76–82 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका

डॉ. वी.पी. मीणा

दूरसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के खेत्र में असाधारण प्रगति ने जहां एक और समूची दुनिया को ''ग्लोबल विलेज'' का रूप दिया वहीं दूसरी और नित नए अविष्कारों ने ग्रामीण समाज एवं शासन को सुविधाओं का नया क्षितिज प्रदान किया है । आज हम कई प्रकार के शब्द जैसे– ई–मेल, ई–बिजनेस, ई–टेंडर, ई–बैंकिग, ई–शिक्षा, ई–चेट, ई–कामर्स, ई–कन्सलटेंट, ई–फैक्स, ई–प्रिक्योरमेंट, टेलीमेडिसिन, विडियों कान्फ्रेंसिंग आदि कौतूहल से सुनते रहते हैं जिनसे समाज में इलेक्ट्रानिक प्रणाली के बढ़ते प्रभाव का सहज अनुमान लगया जा सकता है । कहने का तात्पर्य यह है कि अद्‌भुत इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली सामाजिक–सांस्कृतिक परितर्वन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रही है ।

जिस प्रकार सामाजिक–सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन सूचना क्रांति से प्रभावित और परिवर्तित हो रहा है । उसी प्रकार शासन की कार्यशैली भी परिवर्तित हो रही है सुशासन की अवधारणा सन् 1992 ई. में विश्व बैंक द्वारा प्रस्तुत की गई जिसके अनुसार ''स्मार्ट'' (SMART) M = Measurable/Massoriented (मापनीय/जनाभिमुख) A= Aleart (सतर्क, तत्पर, चौकन्ना) R = Resposible (उत्तरदायी/जिम्मेदार) T = Tractful/Transprent (व्यवहार कुशल/पादर्शी) का आशय लिया जा सकता है ।

राष्ट्रीय ई–शासन की योजना (NEGP) **की शुरूआत**

वर्ष 2006 में भारत सरकार के इलेक्ट्रानिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग (DEITY) प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग द्वारा ई–शासन परियोजना (NEGP) का शुभारम्भ किया गया था, इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य था – शासकीय कार्यों का संचालन ई–गवर्नेंस के माध्यम से करना तथा सरकारी सेवाओं को लोगों को उनके क्षेत्र में ही कम लागत में कॉन सर्विस डिलेवरी आउटलेट्स के माध्यम से सुगम–पारदर्शी तथा विश्वसनीय ढंग से उपलब्ध करना, वर्तमान में इसमें 27 मिशन मोड प्रोजेक्ट (MMP) तथा 8 सहायक (सम्पूरक) घटकों को शामिल किया गया है, इस प्रोजेक्ट के अन्तर्गत केन्द्रीय स्तर पर आयकर, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क तथा पासपोर्ट, राज्य स्तर पर भूमि–सुधार, भू–अभिलेख तथा ई–जिला और स्थानीय स्तर पर पंचायतों, नगर निगमों तथा नगर पालिकाओं को सूचना एवं संचार सेवाओं (ICT) से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया है, मिशन मोड प्रोजेक्ट के तहत सभी विभागों तथा उसकी कार्य योजनाओं के कम्प्यूटरीकरण तथा डिजिटलीकरण पर ध्यान दिया जा रहा है इस परियोजना के अन्तर्गत सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के सम्मिश्रण (समायोजन) से ऐसी व्यवस्था बनायी जा रही है, जिससे आम आदमी कहीं भी, कभी भी सरकारी सेवाओं, सूचनाओं तथा सुविधाओं का डिजिटल व ऑनलाईन माध्यम से त्वरित लाभ उठा सकता है, इस परियोजना के अन्तर्गत प्रभावी तरीके से सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करवाने के लिये त्रिस्तरीय व्यवस्था की गई है – स्टेटवाईड एरिया नेटवर्क (SWAN) सामान्य सेवा केन्द्र (Common Service Center – CSC) तथा राज्य ऑकडा केन्द्र (State Deta Center – SDC), SWAN के अन्तर्गत विभिन्न मिशन मोड प्रोजेक्ट के तहत नागरिक केन्द्रित सेवाओं का एक गेटवे (संयोजन) के माध्यम से उपलब्ध कराने का प्रावधान बनाया गया है CSC के तहत सम्पूर्ण देश में सामान्य सेवा प्रदाता केन्द्र खोले जाऐंग, यद्यपि प्रारम्भ में 1–5 CSC खोलने का लक्ष्य रखा गया था, मगर डिजिटल इण्डिया प्रोग्राम के तहत इनकी संख्या बढ़ाकर वर्ष 2017 के अन्त तक 2.5 लाख कर दी गई है, जिस पर रूपये 4750 करोड़ की लागत आएगी, CSC राज्यों में वेबसक्षम ई–गवर्नेंस सेवाओं को प्रदान करता है, जिसमें आवेदन प्रपत्र, प्रमाण पत्र तथा बिजली–पानी व फोन बिलों के भुगतान जैसी सेवाऐं शामिल है, इसी प्रकार राज्य ऑकड़ों केन्द्रो की स्थापना सेवाओं, अनुप्रयोगों एवं संरचनाओं को राज्यों के लिए G2C, G2G तथा G2B सेवाओं के प्रभावी इलेक्ट्रानिक वितरण प्रदान करने के लिए बनाया गया है, डिजिटल

इण्डिया मिशन के तहत इस परियोजना को विस्तार दिया जा रहा है तथा इसमें नेशनल सर्विस डिलीवरी इंफ्रास्ट्रक्चर, ऑनलाइन UIDAI/आधार, मोबाईल सर्विस डिलीवरी गेटवे, नेशनल क्लाउड मिशन तथा स्टेट पोर्टल व सर्विस डिलीवरी गेटवे जैसे अन्य प्रक्रियाओं को शामिल किया गया है ।

विशिष्ट पहचान संख्या आधार–

विभिन्न राजकीय एवं नागरिक सेवाओं की आपूर्ति, सत्यापन तथा पंजीकरण में आधार कार्ड एवं आवश्यक व अहम् भूमिका निभा रहा है, ई–गवर्नेंस के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता काफी बढ़ी है, दरअसल प्रत्येक भारतीय नागरिक को विशिष्ट पहचान देने के उद्देश्य से यूनिक आइडेंटिफिकेशन अथॉरिटी ऑफ इण्डिया (UIDAI) द्वारा 26 अप्रैल, 2010 को विशेष पहचान नम्बर (12 अंकीय) वाली 'आधार योजना' का शुभारंभ (लोगो जारी) किया गया, इसके तहत देश के प्रत्येक नागरिक को जनसांख्यिकीय तथा बायोमैट्रिक जानकारी वाली एक विशिष्ट पहचान संख्या आधार कार्ड के जरिए उपलब्ध करवाने का प्रावधान बनाया गया । आधार का उपयोग वैयक्तिक पहचान, प्रत्यक्ष नगद सब्सिडी अन्तरण (DBTS) तथा बैकिंग–वित्तीय समेत तमाम बहुउद्देशीय कार्यों के लिए किया जा रहा है ।

सब्सिडी का नगद हस्तांतरण –

रसोई गैस पर नगद सब्सिडी देने तथा इसका लाभ वास्तविक उपभोक्ता तक सीधे पहुँचाने के उद्देश्य से 1 जून, 2013 को केन्द्र सरकार द्वारा पहली डीबीटीएल योजना लागू की गई, प्रथम चरण में इसमें 291 जिलों को कवर किया गया । कुछ आवश्यक सुधारों के साथ केन्द्र सरकार ने 15 नवम्बर, 2014 से पुनः इस योजना को शुरू किया । एक जनवरी, 2015 से इस संशोधित परियोजना का अगला चरण शुरू हुआ, इसमें उपभोक्ता को मिलने वाली सब्सिडी सीधे उसके खाते में पहुँच जाती है, अगर कोई स्वतः सब्सिडी छोड़ना चाहता है, तो उसके लिए सरकार द्वारा मार्च 2015 से 'गिव इट अप' अभियान चलाया गया, जिसके चलते अगस्त, 2016 तक एक करोड़ से अधिक लोगों ने एलपीजी सब्सिडी छोड़ दी, इस योजना के दूसरे चरण के तहत् देश के 676 जिलों के 15.5 करोड़ उपभोक्ताओं को कवर करने का लक्ष्य रखा गया है ।

डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम –

आईटी से प्रत्येक नागरिक को जोड़ने के उद्देश्य से 1 जुलाई, 2015 को डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम की शुरूआत की गई, यह तीन प्रमुख क्षेत्रों पर केन्द्रित है –

(1) प्रत्येक नागरिक की उपयोगिता के रूप में डिजिटल संरचना, (2) मॉग पर शासन तथा सेवाऐं (3) नागरिकों को डिजिटल सशक्तीकरण इसके अलावा डिजिटल इण्डिया कार्यक्रम ब्राडबेण्ड राजमार्ग, सार्वभौमिक मोबाईल कनेक्टिविटी, इंटरनेट कनेक्टिविटी, ई–शासन प्रौद्योगिकी में सुधार, सेवाओं की इलेक्ट्रानिक सुपुर्दगी, सभी के लिए सूचनाऍं व सेवाऍं तथा इलेक्ट्रॉनिक व हार्डवेयर सूचना प्रौद्योगिकी यन्त्रों को बढ़ावा देना आदि विभिन्न लक्ष्यों को भी समेटे हुए है, यानि इस एकल कार्यक्रम के तहत विभिन्न लक्ष्यों को शामिल किया गया है ।

डिजिटल इण्डिया के 9 स्तम्भ –

1– ब्रॉडबैंड हाइवेज

2– फोन तक सबकी पहूँच

3– सार्वजनिक इंटरनेट एक्सेस प्रोग्राम

4– ई–गवर्नेंस (आई.टी.) की मदद से सरकारी तन्त्र सुधार

5– ई–क्रान्ति सेवाओं की इलेक्ट्रॉनिक डिलीवरी

6– सबको सूचना

7– इलेक्ट्रॉनिक्स निर्माण में आत्मनिर्भरता, शून्य आयात

8– नौकरियों के लिए आईटी का इस्तेमाल

9– अर्ली हार्वेस्ट प्रोग्राम

ग्राम पंचायतों को इंटरनेट एवं ब्रॉडबैंड से जोड़ना –

लोकतान्त्रिक प्रणाली में पंचायतों की सशक्त भूमिका बढ़ाने तथा स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने के लिए राष्ट्रीय (NEGP) ई–शासन योजना के (1) ई–पंचायत मिशन मोड परियोजना का शुभारंभ किया गया है, इस परियोजना का मुख्य लक्ष्य देश की सभी 2.47 लाख पंचायतों की आन्तरिक क्रिया–कलापों का स्वचालन सुनिश्चित करना है, इस परियोजना के मुख्य उद्देश्य – (1) पंचायतों की आन्तरिक कार्यप्रणाली प्रक्रियाओं का स्वचलीकरण, (2) आयोजना, बजटिंग, लेखांकन, मॉनीटरिंग, कार्यान्वयन, सामाजिक लेखा परीक्षा, प्रमाण पत्र तथा लाइसेंस जारी करने की नागरिक सेवा सुपुर्दगी को पंचायतों को सौंपना (3) पंचायत जन–प्रतिनिधियों तथा कर्मचारियों की कार्य कुशलता तथा क्षमता निर्माण में वृद्धि, (4) पारदर्शिता, गुणवत्ता, कुशलता तथा जवाबदेही बढ़ाकर पंचायतों का सशक्तीकरण करना तथा (5) स्थानीय स्वशासन की

मजबूती, स्पष्ट है कि ई–पंचायत मिशन मोड के अन्तर्गत शासन प्रशासन का विकेन्द्रीकरण सुनिश्चित किया जाएगा, इस परियोजना के अन्तर्गत 11 मुख्य अनुप्रयोगों (सॉफ्टवेयर) का एक साथ मिलकर एक पंचायत इंटर–प्राइजेस (PES) सूट बना है ।

शासन में नागरिकों की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित करना –

शासन में नागरिकों की अधिकाधिक भागीदारी सुनिशचित करने के लिए MyGov.in को एक मंच के रूप में शुरू किया गया है, इसके लिए चर्चा (डिसकस), करना (डू) तथा प्रसार (डिससेमिनेट) यानि '3D' का रास्ता चुना गया है, उपयोगकर्ताओं के लिए मोबाईल पर इन सुविधाओं को MyGov.in मोबाईल ऐप के जरिए उपलब्ध कराया गया है, इसी प्रकार स्वच्छ भारत मिशन के प्रचार–प्रसार के लिए भी SBM मोबाइल ऐप जारी किया गया है ।

डिजिटल इण्डिया प्लेटफॉर्म (DIP) की शुरूआत –

''इलेक्ट्रॉनिक तथा सूचना प्रौद्योगिकी विभाग'' (DEITY) द्वारा देश में बड़े पैमाने पर विभिन्न मंत्रालयों, विभागों तथा राज्य सरकारों के विवरण (रिकार्डों) के डिजिटलीकरण के लिए 'डिजिटाइज इण्डिया प्लेटफॉर्म (DIP) की शुरूआत की गई है, इसके द्वारा न सिर्फ सरकार द्वारा नागरिक सेवाओं का कुशल वितरण सुनिश्चित किया जाएगा, बल्कि आम नागरिकों को प्रशासनिक व वित्तीय साक्षरता एवं जागरूकता में भी वृद्धि होगी ।

डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम –

डिजिटल इण्डिया मिशन के तहत गाँवों में ब्रॉडबैंड कनेक्टिविटी बढ़ाने के साथ–साथ डिजिटल साक्षरता पर भी काम किया जा रहा है, इसके लिए सरकार डिजिटल साक्षरता मिशन के तहत एक परिवार के एक व्यक्ति को प्रशिक्षण देने की योजना को अमल में लाने के लिए प्रयासरत है, इसके तहत अगले 2 सालों में 10 लाख लोगों को डिजिटल साक्षरता के अन्तर्गत मोबाइल एप तथा वेब पोर्टल के संचालन के क्षेत्र में प्रशिक्षित किया जाएगा, ई–गवर्नेंस के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र को शामिल करने की दिशा में भी तेजी से काम चल रहा है, इसके लिए किसान कॉल सेन्टर की स्थापना की गई, जिसके अन्तर्गत कोई भी किसान 1551 पर कॉल करके खेती से संबंधीत महत्वपूर्ण जानकारियाँ (जैसे– न्यूनतम समर्थन मूल्य, मौसम व जलवायु, मंडी सुविधाए, बीज, खात आदि) हांसिल कर सकता है ।

वेब आधारित शिक्षा पोर्टल की शुरूआत –

शैक्षिक ऋणों को सरल बनाने तथा छात्रवृत्ति प्रक्रियाओं के संचालन व निगरानी के लिए वर्ष 2015–16 के बजट में प्रधानमंत्री विद्यालक्ष्मी कार्यक्रम (PMVLK) का प्रावधान बनाया गया, इसके तहत् माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा वेब आधारित शिक्षा पोर्टल 'विद्यालक्ष्मी' (WWW.vidyalakshmi.co.in) का शुभारम्भ किया गया, वह अपनी तरह का पहला ई–पोर्टल है, जो शैक्षिक प्रक्रियाओं के लिए एक 'एकल खिड़की' (Single Window) के रूप में काम करता है, क्योंकि इसमें सरकारी छात्रवृत्ति के अलावा विभिन्न बैंकों द्वारा दिए जाने वाले शैक्षिक ऋणों की जानकारी एवं उसके ऑनलाइन आवेदन की सुविधा एक ही मंच पर दी जाती है, अब तक सार्वजनिक क्षेत्र के सभी बैंकों ने लगभग 22 शैक्षणिक ऋण योजनाओं को विद्यालक्ष्मी पोर्टल पर पंजीकृत कर दिया है, इस पोर्टल के द्वारा 'राष्ट्रीय छात्रवृत्ति पोर्टल' (National Schoolarship Portal- NSP) का लिंग भी उपलब्ध कराया जाता है, यहॉ छात्र को आवेदन के साथ ही सत्यापन, मंजूरी तथा भुगतान की सुविधा भी उपलब्ध करवायी जाती है ।

भीम एप की शुरूआत –

सरकार द्वारा नवम्बर 2016 में विमुद्रीकरण के बाद ई–पेमेंट को बढ़ावा देने के लिए अनेक प्रयास किए हैं, जिसमें आधार कार्ड से सम्बद्ध 'भीम ऐप' (BHIM) भी जारी किया गया है ।

प्रतिपुष्टि का प्रावधान –

वर्तमान सरकार ने 'वेब पोर्टल्स' तथा 'एप्स' के जरिए भी शासन–प्रशासन के सशक्तीकरण तथा सुदृढ़ीकरण के बेहतर प्रयास शुरू किए हैं, इसके माध्यम से सरकारी योजनाओं एवं कामकाजों को सार्वजनिक करने के प्रयास किए जा रहे हैं, सोशल नेटवर्किंग साईट्स पर भी प्रमुख मंत्रालय एवं उनके मंत्रियों तथा विभागों एवं उनके अधिकारियों की उपस्थिति सुनिश्चित की जा रही है, उक्त माध्यमों के द्वारा द्विपक्षीय संवाद बढ़ाने तथा आम जनता की प्रतिपुष्टि संवाद बढ़ाने तथा आम जनता की प्रतिपुष्टि (Feedback) लेने का भी प्रावधान किया गया है, अगर आपको राज्यवार, जिलेवार अथवा पंचायती स्तर पर विधुतीकरण के कार्यों का विवरण प्राप्त करना है, तो आप वेब पोर्टल http://garv.gov.in तथा मोबाईल ऐप Garv के द्वारा जानकारी प्राप्त कर सकते हैं । नीलामी की प्रक्रिया को पूर्णता ऑन–लाईन तथा पारदर्शी बनाने के लिए

वेब पोर्टल http://eaution.gov.in तथा e_Auctionapp काम कर रहा है, नए–पुराने टेंडरों की जानकारी वेब पोर्टल http://morth.eproc.in/productMORT/public Dash पर मिल सकती है, इसी प्रकार वेब पोर्टल http://pmindia.go.in/en/interact-with-honble-pm के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपनी शिकायत, सुझाव अथवा समस्या सीधे माननीय प्रधानमंत्री जी को भेज सकता है ।

निष्कर्ष एवं सुझाव –

यद्यपि सूचना प्रौद्योगिकी से जहां शासन–प्रशासन में पारदर्शिता, सतर्कता एवं उत्तरदायित्व का विकास हुआ है । वही तकनीकी ज्ञान की कमी, सूचनाओं के प्रति नागरिकों में जागरूकता का अभाव होना, आधारभूत सुविधाओं जैसे सड़क, बिजली, पानी, संचार आदि की कमी होने के कारण सूचना प्रौद्योगिकी का जनहित के कार्यों में पूर्ण उपयोग नहीं हो सका है । तकनीकी कौशल में प्रशिक्षण एवं आधारभूत सुविधाओं के तीव्र विकास के द्वारा ही सूचना प्रौद्योगिकी का शासकीय योजनाओं के क्रियान्वन में कारगर उपयोग किया जा सकता है ।

❐

सन्दर्भ

1 *कुरूक्षेत्र, सूचना भवन, सीजीओ काम्पलेक्स, लोधी रोड़, नईदिल्ली, जनवरी, 2015, पृष्ठ क्रं. 22*

2 *योजना, सूचना भवन, सीजीओ काम्पलेक्स, लोधी रोड़, नईदिल्ली, जनवरी, 2015, पृष्ठ क्रं. 9*

3 *प्रतियोगीता दर्पण, 2/11–ए स्वदेशी बीमा नगर, आगरा–2, अप्रैल, 2017, पृष्ठ क्रं. 84*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* **ISSN 0974 -1100**
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 83–88 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

अशासकीय विद्यालय के विज्ञान विषय में अनुदेशनात्मक आव्यूह का उपलब्धि के संदर्भ में प्रभाविता का अध्ययन

श्रीमती नलिनी शर्मा (खोत)

सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिक के प्रभाव से कोई भी अछूता नही है, चाहे वह व्यापार हो, उद्योग हो या शिक्षा। किसी भी देश की सूचना एवं प्रौद्योगिक की उन्नति और विस्तार का प्रभाव देश की शैक्षिक व्यवस्था पर पड़ता है और इस प्रभाव के परिणामस्वरूप मानव जीवन की गुणवत्ता पर गहरा असर होता है। 'गुणवत्ता' शब्द औद्योगिक जगत से लिया गया है, इसका अर्थ उत्पादन की गुणवत्ता से है। गुणवत्ता का आंकलन उपभोक्ता द्वारा किया जाता है। इस प्रकार जब हम किसी उद्योग को प्रणाली के रूप में देखे तो औद्योगिक इकाई में कार्यरत मजदूर, मशीन, प्रबन्धक आदि गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु कार्यरत होते हैं, अर्थात् अदा (Input) → प्रक्रिया (Process) → प्रदा (Output) औद्योगिक इकाई की एक प्रणाली है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र की किसी भी स्थिति को प्रणाली माना जा सकता है, जैसेः– कक्षानुदेश शिक्षा की ही एक प्रणाली के अन्तर्गत (1) अदा (Input) के रूप में प्रणाली को संचालित करने हेतु कक्षानुदेशन में छात्र, शिक्षक, पाठ्यवस्तु, भवन आदि (2) प्रक्रिया (Process) के रूप में कक्षानुदेशन में शिक्षण, कक्षा में प्रश्न पूछना, छात्रों द्वारा उत्तर देना आदि प्रक्रियाएँ हैं। (3) प्रदा (output) किसी अन्तक्रिया से निकले परिणाम हैं। इस दृष्टि से शिक्षा में प्रदा (Output) के रूप में शिक्षा की गुणवत्ता का अर्थ है, शिक्षण को प्रभावी और अधिगम को सरल एवं स्थाई बनाना है। अतः शिक्षा के इन बहुआयामी उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु शैक्षिक तकनीकी के अन्तर्गत विभिन्न शिक्षण गतिविधियों, तकनीक एवं विधियों से बनी सुसंगठित प्रणाली जिसमें सभी घटक समन्वित रूप में कार्य

निष्पादित करते है, अनुदेशनात्मक आव्यूह कहलाते है। प्रस्तुत शोध में शैक्षिक तकनीकी के अन्तर्गत अशासकीय विद्यालय के कक्षा नवीं स्तर पर विज्ञान विषय में अनुदेशनात्मक आव्यूह का उपलब्धि के सन्दर्भ में प्रभाविता का अध्ययन किया गया। इस शोध का उद्देश्य अनुदेशनात्मक आव्यूह द्वारा अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों एवं परम्परागत अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों के विज्ञान उपलब्धि के माध्य फलांकों की तुलना करना, जब बुद्धिलब्धि को सहचर के रूप में लिया गया हो। इस शोध की परिकल्पना इस प्रकार है, अनुदेशनात्मक आव्यूह के द्वारा अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों एवं परम्परागत अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों की उपलब्धि के मध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा, जब बुद्धिलब्धि को सहचर के रूप में लिया गया हो। शोध के न्यादर्श हेतु उज्जैन के दो अशासकीय विद्यालयों के 60 विद्यार्थियों को यादृच्छिक रूप में चयनित किया गया। इसमे से एक अशासकीय विद्यालय के 30 छात्र–छात्रों को प्रयोगात्मक समुह मे सम्मिलित किया गया। इनकी आयु सीमा 14 से 15 वर्ष के बीच थी। प्रयोगात्मक समूह को अनुदेशनात्मक आव्यूह जिसमें घटकों–व्याख्या सह प्रदर्शन, अभ्यास प्रश्न, स्वयं करने हेतु हरबेरियम फाइल बनाना, प्रयोगात्मक कार्य आदि से आव्यूह को विकसित कर अनुदेशन किया गया। दूसरे अशासकीय विद्यालय को नियंत्रित समूह के रूप में परम्परागत अनुदेशन प्रदान किया गया। प्रदत्त संकलन हेतु शोधकर्ता द्वारा निर्मित विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का उपयोग किया गया। एवं उसके द्वारा प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण हेतु सहप्रसरण विश्लेषण तकनीक को प्रयुक्त किया गया। निष्कर्ष रूप में अनुदेशनात्मक आव्यूह से अनुदेशन प्राप्त समूह की विज्ञान उपलब्धि का माध्य फलांक परम्परागत विधि समूह की विज्ञान उपलब्धि के माध्य फलांकों की तुलना में सार्थक रूप से उच्च पाया गया। अतः कह सकते है कि अनुदेशनात्मक आव्यूह के प्रति विद्यार्थियों द्वारा सकारात्मक अनुभूति प्राप्त की गई।

प्रस्तावना :

वर्तमान युग प्रौद्योगिक का युग है। प्रौद्योगिक के क्षेत्र में आज बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। आज 21वीं सदी जिसमें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिक की प्रक्रिया के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी निरन्तर तीव्र गति से परिवर्तन एवं नई–नई तकनीकी ज्ञान प्रस्फूटित हो रहा है जैसे दृश्य–श्रव्य सामग्री, सूचना संचार एवं सम्प्रेषण साधन, जनसम्पर्क माध्यम और यांत्रिक एवं इलेक्ट्रानिक उपकरणों जैसे प्रोजेक्टर, फिल्म, रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, शिक्षण मशीन, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि। इनमें से आज सूचना

प्रौद्योगिक का सशक्त माध्यम कम्प्यूटर है। सूचना प्रौद्योगिक कम्प्यूटर पर आधारित सूचना प्रणाली का आधार है। इसलिए सूचना प्रौद्योगिक वर्तमान समय में वाणिज्य, व्यवसाय के साथ शिक्षा का भी अभिन्न अंग बन गयी है। संचार क्रांति के फलस्वरूप इलेक्ट्रानिक संचार सूचना प्रौद्योगिक के मुख्य घटक माना जाने लगे हैं, इसलिए इसे सूचना संचार प्रौद्योगिक भी कहा जाता है।

'सूचना विस्फोट' एवं 'जनसंख्या विस्फोट' ने शिक्षा के लिए गंभीर समस्याएँ खड़ी की, जैसे परम्परागत तरीकों से ज्यादा विद्यार्थियों को सिखाना अब सम्भव नहीं था। अतः इस समस्या को सफलतापूर्वक सुलझाने के लिए तकनीक के क्षेत्र में शैक्षिक तकनीकी (Educational Technology) के विकास के अन्तर्गत सूचना प्रौद्योगिकी ने अधिगम प्रक्रिया में क्रांति की शुरुआत की एवं विज्ञान जैसे कठिन विषय को अधिगमकर्ता के लिए आसान एवं रुचिकर बना दिया गया। शैक्षिक तकनीकी की मदद से शिक्षा का मात्रात्मक विस्तार एवं गुणात्मक सुधार दोनों ही सरल किये जा सकते हैं। इस हेतु शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास अर्थात् ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक पक्षों के विकास हेतु शिक्षक को एक से अधिक शिक्षण प्रविधियाँ, युक्तियाँ एवं शिक्षण विधियों का उपयेाग कर शिक्षण अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है और इस समन्वित व्यूह रचना को अनुदेशनात्मक आव्यूह कहते है। विज्ञान शिक्षण को प्रभावी बनाने की दिशा एवं शिक्षण में नवाचार तकनीक लाने के लिए अनुदेशात्मक आव्यूह पर कई शोधकार्य हुए जैसे बासु (1981), वर्धिनी (1983), जोशी (1986) आदि शोधकर्त्ता द्वारा घटकों के रूप में अभिक्रमित अनुदेशन सामग्री, चलचित्र, प्रक्षेपित साधन, मानदण्ड परीक्षण, दृश्य–श्रव्य सामग्री, अभ्यास प्रश्न आदि से आवयूह का विकास कर अनुदेशनात्मक आव्यूह का सकारात्मक प्रभाव पाया। शोधकर्त्ता ने अधिगमकर्त्ता के अनुरूप, कक्षा उपयोगिता एवं अनुदेशन उद्देश्यों के आधार पर इन घटकों के अलावा कक्षा अनुरूप अन्य घटकों का चुनाव कर अनुदेशनात्मक आव्यूह का विकास कर विज्ञान विषय में अनुदेशनात्मक आव्यूह का उपलब्धि के सन्दर्भ में प्रभाविता का अध्ययन इस दिशा में एक प्रयास किया गया।

उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य निम्नानुसार है –

अनुदेशनात्मक आव्यूह द्वारा अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों एवं परम्परागत अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों के विज्ञान उपलब्धि के माध्य फलांकों की तुलना करना, जब बुद्धिलब्धि को सहचर के रूप में लिया गया हो।

परिकल्पना :

प्रस्तुत शोध की परिकल्पना निम्नानुसार है –

अनुदेशनात्मक आव्यूह के द्वारा अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों एवं परम्परागत अनुदेशन प्राप्त विद्यार्थियों की उपलब्धि के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा जब बुद्धिलब्धि को सहचर के रूप में लिया गया हो।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति प्रयोगात्मक थी।

न्यादर्श :

उज्जैन शहर के दो अशासकीय विद्यालय के 60 विद्यार्थियों को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया तथा यादृच्छिक न्यादर्श विधि का उपयोग किया गया। उज्जैन के एक अशासकीय विद्यालय के 30 विद्यार्थियों का प्रयोगात्मक समूह हेतु तथा दूसरे अशासकीय विद्यालय के 30 विद्यार्थियों का नियंत्रित समूह हेतु चयनित किया गया।

उपकरण :

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित विज्ञान उपलब्धि परीक्षण द्वारा विज्ञान उपलब्धि का मापन किया गया।

प्रयुक्त सांख्यिकी :

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु सहप्रसरण विश्लेषण तकनीक का प्रयोग किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण :

विज्ञान उपलब्धि के लिए एक मार्गीय सह प्रसरण विश्लेषण का सारांश जब बुद्धिलब्धि को सहचर के रूप में लिया गया हो।

तालिका

विवरण के स्त्रोत	SSyx	df	MSSyx	Fyx Value
समूह	4308.265	1	4308.265	94.911
त्रुटि	2587.373	57	45.393	
कुल		60		

तालिका से स्पष्ट है कि समूह के समायोजित F Value 94.911 है, जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है जबकि df = 1/57 है। इससे स्पष्ट है कि अनुदेशनात्मक आव्यूह द्वारा अनुदेशन प्राप्त समूह की विज्ञान उपलब्धि का माध्य फलांक परम्परागत विधि समूह की विज्ञान उपलब्धि के माध्य फलांकों की तुलना में उच्च है।

निष्कर्ष एवं विवेचना :

अनुदेशनात्मक आव्यूह परम्परागत अनुदेशन की तुलना में विद्यार्थियों की विज्ञान उपलब्धि बढ़ाने में सार्थक उच्च पाया गया तथा अनुदेशनात्मक आव्यूह परम्परागत अनुदेशन की तुलना में प्रभावी पाया गया। इस परिणाम के प्राप्त होने के कई कारण हो सकते हैं। विद्यार्थियों को अनुदेशनात्मक आव्यूह से अनुदेशन में पर्याप्त सक्रियता एवं आनन्द आया जो एक तंत्रात्मक एवं नीरस प्रणाली से अलग था। आव्यूह संरचना के स्वरूप के कारण विद्यार्थियों में कक्षा के प्रति सक्रियता, विज्ञान विषय के प्रति जागरूकता एवं स्वयं करके सीखने से विषय की जटिलता को सरल करने में सहायक सिद्ध हुआ। अतः आव्यूह के प्रति विद्यार्थियों द्वारा सकारात्मक अनुभूति प्राप्त की गई।

शैक्षिक निहितार्थ :

1. विज्ञान शिक्षक अलग–अलग अनुदेशनात्मक आव्यूहों का विकास कर अपने शिक्षण को प्रभावी बना सकते है।
2. शिक्षक प्रशिक्षक शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की अलग–अलग विषयों से संबंधित आव्यूह का विकास कर उसके द्वारा शिक्षण का अभ्यास करा सकते है।
3. पाठ्य पुस्तक लेखक इस शोध अध्ययन को ध्यान में रखकर अपनी पाठ्य पुस्तक के क्रम का निर्धारण इस प्रकार करे जिससे विद्यार्थियों में तर्कशक्ति, चिन्तन शक्ति का विकास हो साथ विज्ञान शिक्षण विषय को व्यावहारिक बना सके।

❐

सन्दर्भ

1. आर.ए. शर्मा, अनुदेशनात्मक एवं शिक्षण तकनीकी, आर. लाल डिपो, मेरठ 1995
2. टी. एन. कुलकर्णी, शैक्षिक प्रौद्योगिक, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स, 2008
3. के. एस. मंगल, शिक्षण तकनीकी, नई दिल्ली, पी. एच. आई लर्निंग प्रायवेट लिमिटे, 2012
4. M. K.Basu, "Effectiveness of Multi Media Programmed material in the teaching of Physics", Unpublished Ph.D. Thesis, University of Kalyani, (1981).
5. V. P. Vardhini, "Development of a Multi Media Instructional Strategy for Teaching Science (Physics & Chemistry) at Secondary Level". Unpublished Ph.D. Thesis, MS University of Baroda, (1983).
6. A. Joshi, "Evolvement of Instructional Strategy for Teaching Elements of Science in Class IX Students of M.P. State. Ph.D. Edu. DAVV, Indore, (1986).

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 89–91 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

मानव जीवन में ज्योतिष का महत्व

अरविन्द खोत

मानव स्वभाव से ही जिज्ञासु प्राणी है वह हमेशा जानना चाहता है कि क्यों ? कैसें ? कब ? कहाँ ? कल मेरे जीवन में क्या होने वाला हैं, क्योंकि मनुष्य केवल प्रत्यक्ष बातों को ही जानकर संतुष्ट नही होता , बल्कि भविष्य में क्या होने वाला है उसको जानने के लिए सदैव उत्सुक रहता है और इसका एक मात्र साधन ज्योतिष शास्त्र है। ज्योतिष के माध्यम से हम भविष्य के गर्त में क्या छिपा है इसे जान सकते है ।

भारतीय ज्योतिष अत्यंत पुरातन है समस्त भारतीय ज्ञान की पृष्ठभूमि दर्शनशास्त्र है, यही कारण है कि भारत सभी प्रकार के ज्ञान को दार्शनिक मापदण्ड द्वारा मापता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार वह ज्योतिष को भी इसी दृष्टिकोण से देखता है क्योंकि भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है, इसका कभी नाश नहीं होता है। केवल ऊपरी आवरण बदलते रहते हैं एवं उसके साथ उसके कर्म बन्धन भी बन्धते रहते हैं क्योकि मनुष्य जो भी कर्म करता है चाहे वह अच्छा हो या बुरा कर्म बन्धन में तो वह बन्ध ही जाता है । वैदिक दर्शन में कर्म के तीन भेद बतलाये गये हैं – संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। हमारे द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया कर्म एवं पिछले जन्म जन्मान्तर से किये हुए कर्म को संचित कर्म कहा जाता है एवं समस्त जन्म जन्मान्तर के कर्मों के संग्रह में से एक छोटे से भाग को जिसे हम भोग रहे हैं प्रारब्ध कहलाता है एवं जो अभी किया जा रहा है, वह क्रियमाण कहलाता है। इस प्रकार इन तीनों तरह के कर्मों के कारण आत्मा अनेक जन्मों पर्यन्त शरीर धारण कर अपने कर्म अनुसार सुख या दुःख भोगती रहती है।

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम् ।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम् ।।

अर्थात जन्म के समय जिन–जिन रश्मिवाले ग्रहों की प्रधानता होती है, जातक का स्वभाव वैसा ही बन जाता है एवं उस अनुसार ही जातक को प्रसिद्ध, यश, मान, अपमान, प्रतिष्ठा एवं आयु प्राप्त होती है।

हमारे सभी कार्य जाने अनजाने में ज्योतिष के द्वारा ही चलते है। व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष एवं उत्सव आदि का ज्ञान इसी शास्त्र के माध्यम से होता है परंन्तु इसका हमें बोध तक नही होता है कि हम ज्योतिष का उपयोग कर रहे हैं। मनुष्य के जीवन में गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कार, धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार यह सब ज्योतिष शास्त्र के बिना संभव नही है।

"ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्" अर्थात सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिष शास्त्र कहा जाता है। इसमें मुख्यतः ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु आदि का स्वरूप , संचार, परिभ्रमण काल, आकार, ग्रहण और स्थिति का अध्ययन किया जाता है एवं उसका मानव जीवन पर क्या प्रभाव पडता है इस का भी अध्ययन भी इस शास्त्र के माध्यम से किया जाता है। ज्योतिष शास्त्र को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जाता है – सिद्धान्त, होरा और संहिता :–

होरा – इसे जातकशास्त्र भी कहते है इसकी उत्पत्ति अहोरात्र शब्द से हुई है, इसमें प्रथम शब्द "अ" और अन्तिम शब्द "त्र" का लोप कर देने से होरा शब्द बनता है। जन्म के समय ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के लिए फल का निरूपण इसमें किया जाता है। इस शास्त्र में जन्म कुण्डली के बारह भावों के फल उनमें स्थित ग्रहों की स्थिति तथा ग्रहों की दृष्टि का विस्तार से वर्णन किया गया है। जातक के जीवन में आने वाले सुख, दुख, अनिष्ट, उन्नति, भाग्योदय, विवाह, संन्तान आदि सभी शुभाशुभों का वर्णन इस शास्त्र के माध्यम से किया जाता है। होरा ग्रन्थों में फल निरूपण के दो प्रकार है। एक में जातक के जन्म नक्षत्र पर से और दूसरे में जन्म लग्नादि द्वादश भावों पर से विस्तारपूर्वक विभिन्न दृष्टिकोणों से फलकथन की प्रणाली बतायी गयी है जो आज के समय में बहूत अधिक प्रचलित है जिसका ज्योतिष अभी वर्तमान में सबसे अधिक प्रयोग कर फलकथन करते है जो सटिक होने के साथ व्यवहारिक भी है।

सिद्धान्त – इसमें पल विपल से लेकर कल्पकाल तक की कालगणना, सौर मान चन्द्र मानों का प्रतिपादन ग्रहों की गति, वक्र गति, लम्बज्या, कुज्या, इष्टकाल, ग्रहों के अंश इत्यादि का विस्तार से वर्णन किया जाता है।

संहिता – इसमें भूशोधन से लेकर दिशा शोधन, शल्योद्वार, विवाह मेलापक, मांगलिक कार्यों के लिये मुहूर्त, ग्रहों के उदयास्त का फल, ग्रहण फल आदि बातों का विस्तार से विवेचन किया जाता है।

प्रश्नकुण्डली – प्रश्नकुण्डली के माध्यम से जन्म कुण्डली न होने पर भी प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षरों पर से फल का प्रतिपादन किया जा सकता है यह तत्काल फल बतलाने वाला शास्त्र है। प्रश्नलग्न सिद्धान्त का सबसे अधिक प्रचार वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशा के समय से हुआ है। जिसका आज भी दिन प्रतिदिन महत्व बढ़ रहा हैं। एवं शकुन शास्त्र के माध्यम से प्रत्येक कार्य के पूर्व में होने वाले शुभाशुभों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

निष्कर्षः– इस तरह जाने अनजाने में ज्योतिष व्यक्ति के जीवन पर अपना प्रभाव डालता है जो उन्हें मानते हैं उन पर भी एवं जो नहीं मानते उन पर भी और इसी के साथ ज्योतिषी भावी या वर्तमान दुखों का ग्रह–सम्बन्धी अध्ययन करके दान, जप, पूजा, हवन एवं रत्नों के माध्यम से शांति के उपाय बताते है। इन उपायों कें माध्यम से पाप कर्म के फल–भोग से मुक्ति मिल जाती है या दुख में कुछ कमी अवश्य आ जाती है इस प्रकार कुछ उपायों के माध्यम से हम खराब समय को अच्छा एवं अच्छे समय को और भी अच्छा बना सकते हैं।

आज के व्यवसायिक युग में ज्योतिष शास्त्र को केवल एक पैसा कमाने का साधन बनाया जा रहा है जो सर्वथा उचित नही है क्योंकि ज्योतिषशास्त्र का उद्देश्य सुखी और समृध्द जीवन व्यतीत करते हुए हमारे अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति के ध्येय को प्राप्त कर अपने मनुष्य जीवन को सफल बनाता है ।

❐

सन्दर्भ

1. *वराहमिहिर, बृहत् संहिता; रंजन पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली*
2. *राम दैवज्ञ, मुहूर्त चिन्तामणि; बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त, बनारस*
3. *राधेश्याम खेमका, कल्याण ज्योतिषतत्व अंक; गीताप्रेस, गोरखपुर*
4. *वराहमिहिर, बृहज्जातक; चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी*
5. *कल्याण वर्मा, सारावली; मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली*
6. *नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष; भारतीय ज्ञानपीठ काशी*
7. *डॉ.राजेश्वरशास्त्री मुसलगाँवकर,श्रीयोगचिन्तामणिः और व्यवहार–ज्योतिष; चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी*

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 92–95 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

भारतीय संविधान की सामाजिक संरचना में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की भूमिका

डॉ. दत्तात्रय पालीवाल एवं डॉ. राजेश ललावत

भारतीय संविधान का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन एवं विकास हैं। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुवे स्वतंत्र भारत के संविधान की संरचना की गई हैं। इसीलिये सामान्यतः यह कहा जाता है कि ''भारतीय संविधान सर्वप्रथम एक सामाजिक प्रलेख हें । इसके अधिकांश प्रावधान सामाजिक क्रान्ति की दिशा में आगे बढ़ाते हैं अथवा आवश्यक परिस्थितियाँ पैदा कर इस क्रान्ति के विकास को सम्भव बनाते हैं। भारत के संविधान निर्माताओं ने हिंसात्मक क्रान्ति की बजाय सहमति से क्रान्ति या शांतिपूर्ण साधनों से विकास को अपना लक्ष्य बनाया हैं। इसी आधार पर भारतीय संविधान को सामाजिक न्याय का चार्टर भी कहा जाता हैं।

सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति परस्पर पूरक हैं और इनमें से एक के बिना दूसरे को प्राप्त नहीं किया जा सकता हैं। यदि हम अपनी समाज व्यवस्था पर दृष्टि डालें, तो वह स्पष्ट हो जाता हैं कि हमारी समाज व्यवस्था मध्यकालीन है और उसके आधार पर एक आधुनिक तथा प्रगतिशील आर्थिक व्यवस्था तथा राजनीतिक व्यवस्था को अपनाना और बनाये रखना सम्भव नहीं हो सकता हैं। जाति व्यवस्था, छुआछूत की प्रवृत्ति, जीवन के प्रति अवैज्ञानिक दृष्टिकोण और सामाजिक जीवन की अन्य अनेक त्रुटियाँ इस मध्यकालीन समाज व्यवस्था के ही चिन्ह है। भारतीय संविधान के इस सामाजिक एवं आर्थिक आधार तथा दर्शन का परिचय संविधान के उद्देश्य प्रस्ताव एवं संविधान की प्रस्तावना में मिलता हैं और उसे प्रमुख रूप में संविधान के भाग–तीन, मौलिक अधिकार और उससे भी अधिक प्रमुख रूप से संविधान के भाग–चार, नीति–निर्देशक तत्व में देखा

जा सकता हैं। वास्तव में उद्देश्य प्रस्ताव संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और नीति–निर्देशक तत्व को सामूहिक रूप से संविधान की आत्मा कहा जा सकता हैं।

संविधान का सामाजिक–आर्थिक आधार व दर्शन का परिचय संविधान के उद्देश्य प्रस्ताव में मिलता है। भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, पद, अवसर एवं कानूनों की समानता, विचार, भाषण, अभिव्यक्ति, विश्वास, व्यवसाय, संघ निर्माण और कार्य की स्वतंत्रता, कानून और सार्वजनिक नैतिकता के अधीन प्राप्त होगी । इसी प्रकार संविधान की प्रस्तावना देश के सभी लोगों को सामाजिक न्याय तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करती हैं । इसमें यह भाव निहित हैं कि राज्य लोगों के कल्याण के लिये विशेषकर समाज के पिछड़े व कमजोर वर्गों के कल्याण के लिये विशेष कार्यक्रम को अपनाऐगा, जिसमें उनके लिये अवसर की समानता न केवल शब्दों में रहे वरन एक वास्तविकता का रूप ग्रहण कर सके। उद्देश्य प्रस्ताव और संविधान की प्रस्तावना में संविधान के जिस सामाजिक आधार एवं दर्शन का संकेत किया गया हैं, उसी का विस्तृत प्रतिपादन मौलिक अधिकार और नीति–निर्देशक सिद्धान्तों में मिलता हैं । इस प्रकार सभी नागरिकों के लिये जीवन के सभी क्षेत्रों में अधिक से अधिक सम्भव सीमा तक समानता और उनका कल्याण भारतीय संविधान का सामाजिक आधार एवं दर्शन हैं। संविधान का मूल उद्देश्य यह हैं कि धर्म, जाति, जन्म स्थान, लिंग, वर्ण, सम्पत्ति, भाषा या ऐसे किसी अन्य आधार पर नागरिक में कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। इसे ही अन्य शब्दों में सामाजिक लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता कहा जा सकता है। समानता की व्यवस्था करने में भारतीय संविधान के निर्माता यथार्थवादी थे और उन्होंने विशेषतः डॉ.बी.आर.अम्बेडकर ने इस विचार को अपनाया कि समाज के कमजोर वर्गो के लिये विशेष सुविधाओं की व्यवस्था करना न केवल औचित्यपूर्ण है, वरन् आवश्यक है। संविधान की प्रस्तावना में देश के सभी लोगों के लिये सामाजिक न्याय के साथ ही आर्थिक न्याय का भी वचन दिया गया हैं, जिसका तात्पर्य हैं कि देश के आर्थिक साधनों एवं समृद्धि का लाभ सभी व्यक्तियों को प्राप्त होना चाहिए।

डॉ. बी.आर अम्बेडकर भारतीय समाज व्यवस्था में केवल कुछ सुधारों तक सीमित रहना नहीं चाहते थे, बल्कि वह उनमें मौलिक और क्रांतिकारी परिवर्तन के पक्षधर थे। उनके मतानुसार सामाजिक सुधार का काम समाज में मौलिक परिवर्तन लाने वाला होना चाहिये। समाज सुधार की नींव गहरी होना चाहिये, तभी लक्ष्यों को प्राप्त किया जा

सकता है। डॉ. बी.आर अम्बेडकर ने न केवल परम्परागत समाज में आमूल परिवर्तन की बात की अपितु उसके लिये प्रयत्न भी किया। डॉ. अम्बेडकर के मतानुसार जाति–प्रथा एवं छूआछूत ने भारतीय समाज को टुकडों–टुकडों में बाँटकर खण्डहर बना दिया है तथा सामाजिक एवं वैयक्तिक विकास के मार्ग को अवरूद्ध किया है। समाज में जब तक जातिभेद बना रहेगा तब तक समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकेगा। उन्होंने जाति–व्यवस्था को सामाजिक एकता एवं सामाजिक समरसता में बाधक बताया। उनका यह भी मानना था कि स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता के सर्वोच्च मानव–मूल्यों को प्राप्त करने के लिये जाति–व्यवस्था को समाप्त करना आवश्यक है। अतः उसका उन्मूलन ही एकमात्र न्योयोचित मार्ग है, इस हेतु जाति–व्यवस्था के दुश्प्रभावों को रोकने के लिये उन धार्मिक आधारों को ध्वस्त करना होगा जिस पर यह आधारित है। उनके उक्त क्रान्तिकारी विचारों ने ही समाज में एकता, सामाजिक समरसता एवं सामाजिक न्याय की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर समाज को एक नई दिशा दी तथा भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने का प्रयास किया जाता रहा।

डॉ. अम्बेडकर एक आदर्श समाज की स्थापना करके सामाजिक प्रजातन्त्र भी लाना चाहते थे। जिसके अन्तर्गत वे ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें व्यक्ति को विचारों की अभिव्यक्ति, शिक्षा और आत्मविकास की तथा आजीविका के चुनाव की स्वतन्त्रता हो। उनके विचार से एक आदर्श समाज में सभी व्यक्तियों के विचार मूलतः बन्धुतायुक्त हो। उनमें यह चेतना होनी चाहिये की वे सब एक है। आपस में भाईचारा होना चाहिए, उनमें ऐच्छिक रूप से उठने–बैठने व मिलने–जुलने की स्वतन्त्रता एवं समानता हो। डॉ. अम्बेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख शिल्पियों में से थे। अतः उन्होंने भरसक प्रयास किया की भारतीय समाज में विभेद पैदा करने वाली सभी व्यवस्थाओं का संविधान द्वारा विधिवत निराकरण किया जाये। साथ ही जातिविहिन समतामूलक समाज की रचना का मार्ग प्रशस्त हो सके। तथा समाज में सामाजिक न्याय एवं सामाजिक समरसता बनी रहे।

भारतीय संविधान की उद्देश्यिका भारत के समस्त नागरिकों के लिये सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता और बन्धुत्व को सुनिश्चित करती है। इस प्रकार उन्होंने भारतीय समाज में जनजागृति कर, नये युग का निमार्ण करने में बहुत बड़ी

सफलता प्राप्त की। भारतीय संविधान ने सामाजिक न्याय एवं सामाजिक समरसता की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय समाज में सदियो से पद–दलित, मूक, पीड़ित, शोषित, तिरस्कृत व अपमानित समाज के 'शूद्र' कहलाने वाले वर्ग के ज्ञानार्जन, अस्मिता एवं अस्तित्व के लिये संघर्ष किया तथा विकृतियों से भरे भारतीय समाज को झकझोर कर जगाया, उसे एक सूत्र, एक राष्ट्रीयता में बांधकर राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्र के सशक्तिकरण में अप्रतीम योगदान दिया। इसलिये आज डॉ. अम्बेडकर को भारतीय समाज में राष्ट्र निर्माता के सम्मान का उच्चशिखर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार यदि कहा जाये कि डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के विस्तार तथा उसकी गहराई और प्रभावशीलता ने ही भारतीय समाज को नई दिशा दी है, आतिशयोक्ति नही होगी।

❐

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 96–99 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों की प्रासंगिकता

डॉ. हरिमोहन धवन

वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा उनके समग्र विचारों के प्रति देश के सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनैतिक धरातल पर, विशेषकर बुद्विजीवी वर्ग में एक आम जिज्ञासा का भाव व्याप्त है। इसके मूल में विशिष्ट राजनैतिक विचारधारा से अभिप्रेरित समाज के एक वर्ग विशेष का वैचारिक आग्रह है। जो कि पंडित उपाध्याय के राष्ट्रवादी विचार दर्शन एवं सामाजिक सांस्कृतिक सरोकार की देश में पुर्नस्थापना का प्रयास करना चाहता है। इस प्रयास में वर्तमान केन्द्र सरकार की भी सक्रिय भूमिका परिलक्षित प्रतीत होती हैं। इसी का प्रतिफल है कि देश में पण्डित उपाध्याय का जन्म शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा हैं।

पण्डित उपाध्याय राष्ट्रवादी विचारों के लिये याद किये जाते हैं वे एक अर्थ में भारतीय राजनीति के साधक थे । भारतीय राजनीति में दीनदयाल जी का प्रवेश कतिपय लोगों को नीचे से ऊपर उठने की कहानी मालुम पड़ती हैं। देश के चिन्तक वर्ग को कभी–कभी लगता है कि दीनदयाल जी की राजनीतिक उपलब्धियां कम हें लेकिन सवाल ये हें कि क्या अन्य नेताओं की तरह उनमें भी राजनीतिक महत्वकांक्षा थी ?

उनके चिंतन में एक ऐसी मौलिकता थी, जो भारतीय इतिहास, परंपरा, राजनीति और भारतीय अर्थनीति से प्रस्फुटीत हैं तथा आधुनिक स्थितियों और आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ दिशाओं का निर्देशन करती हैं। उनके चिंतन की प्रेरणा–बिंदु भारत का निर्धन, अनिकेत और रूढियों से ग्रस्त नागरिक हैं, सामाजिक जीवन में पीछड़ेपन की समाप्ति की परम आवश्यकता उनके मानस में गहरी बैठी थी। वे दरिद्रनारायण की हृदय

से सेवा करने मे विश्वास करते थे। उनका मानना था कि जब तक अन्त्योदय अर्थात अंतिम पंक्ति में खडे व्यक्ति का संपूर्ण विकास नहीं हो जाता, तब तक राष्ट्र के पुनर्निर्माण का स्वप्न अधूरा हैं

भारत की एकता और अंखडता पर वह हमेशा कहा करते थे कि ''भारत की एकता और अंखडता की साधना हमने हमेशा की हैं, हमारे राष्ट्र का इतिहास इस साधना का ही इतिहास हैं'' पंडित जी के दर्शन का सार राष्ट्र की उन्नति ही थी। उनका मानना था कि इसके लिए कर्म ही नहीं, साधना भी जरूरी हैं। अपने जीवन को राष्ट्र पुनर्निर्माण के लिये समर्पित कर देना ही उनका एक मात्र लक्ष्य था।

पण्डित उपाध्याय के विचारों के प्रशंसक लेखकों का मानना था कि ''भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दू राष्ट्र और राम राज्य की जो परिकल्पना पेश की गयी थी, उसे छद्म धर्मनिरपेक्षता निगल गयी । जहां मुस्लिम तुष्टीकरण को धर्मनिरपेक्षता के आवरण के सहारे बहुसंख्यक हिंदुओं की मूल भावना से लगातार खिलवाड़ किया जाने लगा और यही से प्रारंभ हुआ हिंदू संस्कृति को भारतीय परंपरा के मूल से हटाने का कार्यक्रम जो आज तक अनवरत जारी हैं ।''

पण्डित उपाध्याय भारत में राष्ट्रवादी चिंतन के एक प्रखर प्रवक्ता रहे हैं । अगर यूं कहें कि देश में जो भारतीय जनता पार्टी हें, उसकी विचारधारा से जुडे समाज का निर्माण करने के पीछे पंडित उपाध्याय हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी । पंडित दीनदयाल उपाध्याय के संघर्ष और सपने के प्रतिफल से भारतीय जनता पार्टी आज देश का सबसे बडा राजनीति दल बन चुकी हैं ।

अन्य सामाजिक संगठन और लेखक, विचारक भी उनके विचारदर्शन पर मनन–चिंतन और व्याख्यान करने वाले हैं । पंडित उपाध्याय और उनके विचार को उतना विस्तार नहीं मिल सका, जितना मिलना चाहिए था वह समय अब आया हैं जिसकी सच्चाई देश के विभिन्न पंथों और विचारों के लोग स्वीकार कर रहे हैं । अब पंडित उपाध्याय का मूल्यांकन हो रहा हैं एवं अनेक नवींन ग्रंथों की रचना की जा रही हैं ।

विलक्षण बुद्धि, सरल व्यक्तित्व एवं नेतृत्व के अनगिनत गुणों के स्वामी भारतीय राजनीतिक क्षितिज के इस प्रकाशमान सूर्य ने भारतवर्ष में समतामूलक राजनीति विचारधारा का प्रचार एवं प्रोत्साहन करते हुए सिर्फ 52 साल तक की उम्र में अपने प्राण राष्ट्र को समर्पित कर दिए । अनाकर्षक व्यक्तित्व के पण्डित दीनदयालजी उच्चकोटी के दार्शनिक थे किसी प्रकार का भौतिक माया–मोह उन्हें छू तक नहीं सका ।

जनसंघ के राष्ट्रजीवन दर्शन के निर्माता पं. उपाध्याय का उद्देश्य स्वतंत्रता की पुर्नरचना के प्रयासों के लिए विशुद्ध भारतीय तत्व–दृष्टि प्रदान करना था । उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानवाद जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी । दीनदयालजी को जनसंघ के आर्थिक नीति का रचनाकार बताया जाता हैं। आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्य मानव का सुख है यह उनका विचार था । विचार–स्वातंत्रय के इस युग में मानव कल्याण के लिए अनेक विचारधारा को पनपने का अवसर मिला है। इसमें साम्यवाद, पूंजीवाद, अन्त्योदय, सर्वोदय आदि मुख्य है। किन्तु चराचर जगत को सन्तुलित, स्वस्थ्य व सुंदर बनाकर मनुष्य मात्र पूर्णता की ओर ले जा सकने वाला एकमात्र प्रक्रम सनातन धर्म द्वारा प्रतिपादित जीवन विज्ञान, जीवन–कला व जीवन–दर्शन हैं ।

संस्कृतिनिष्ठा दीनदयाल जी के द्वारा निर्मित राजनैतिक जीवनदर्शन का पहला सूत्र हैं उनके शब्दों में –''भारत में रहनेवाला और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन हैं, उनकी जीवन प्रणाली, कला, साहित्य, दर्शन सब भारतीय संस्कृति हैं, इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति हैं, इस संस्कृति में निष्ठा रहे तभी भारत एकात्म रहेगा ।''

''वसुधैव कुटुम्बकम'' हमारी सभ्यता से प्रचलित हैं। इसी के अनुसार भारत मे सभी धर्मो को समान अधिकार प्राप्त हैं। संस्कृति से किसी व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र आदि की वे बातें जो उनके मन, रूचि, आचार, विचार, कला–कौशल और सभ्यता का सूचक होता हैं पर विचार होता हैं । भारतीय सरकारी राज्य पत्र (गजट) इतिहास व संस्कृति संस्करण में यह स्पष्ट वर्णन हें कि हिन्दुत्व और हिन्दुइज्म एक ही शब्द हैं तथा यह भारत की संस्कृति और सभ्यता का सूचक हैं।

राष्ट्रवादी विचारधारा के मजबूत स्तंभ बने पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने मानव जीवन के संबंध में दुनिया में प्रचलित परिकल्पनाओं की अपेक्षा कहीं अधिक संपूर्ण दर्शन दिया । पंडित उपाध्याय का एकात्म मानवदर्शन बहुत व्यावहारिक था यही कारण हें कि विरोधी विचारधाराओं के तमाम अवरोधों के बाद भी एकात्म मानव दर्शन ने जो मान्यता हांसिल की हैं । इसमें संपूर्ण जीवन की एक रचनात्मक दृष्टि हैं, इसमें भारत का अपना जीवन दर्शन हैं, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को टुकड़ों में नहीं, समग्रता में देखता है, इन चारों को अलग–अलग करके विचार नहीं किया जा सकता बहरहाल, जब दीनदयाल

उपाध्याय के विलक्षण व्यक्तित्व एवं उनके विचार दर्शन की व्यापक चर्चा का अवसर आया हें तो राजनीति, मीडिया और जनसंचार के अध्येताओं को उनके संबंध में अधिक से अधिक संदर्भ सामग्री की आवश्यकता हैं ।

पण्डित उपाध्याय की ख्याति विश्व को एकात्म मानवदर्शन का चिंतन देने और भारतीय जनता पार्टी के विचार–पुरूष के रूप में हैं । भारतीय राजनीति में उनके अवदान से फिर भी दुनिया भली–भांति परिचित हैं, लेकिन पत्रकारिता एवं जनसंचार के क्षेत्र में उनके योगदान को बहुत कम विद्वान जानते हैं । बहरहाल, अंत्योदय का विचार देने वाले पण्डित दीनदयाल उपाध्याय पर उनके जन्मशताब्दी वर्ष में संगोष्ठी आदि आयोजन किया जाना चाहिए जो कि शोधार्थियों, राजनीतिज्ञों, पत्रकारों और लेखकों के लिए महत्वपूर्ण हैं । बदलते भारतीय परिप्रेक्ष्य में पण्डित उपध्याय के विचारों की प्रासंगिकता और उनका समग्र मूल्यांकन किये जाने की महति आवश्यकता हैं ।

❐

पूर्वदेवा– *सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका* ***ISSN 0974 -1100***
वर्ष 23, अंक 89–90, अप्रेल–सितम्बर, 2017 पृ. 100–104 रेफर्ड रिसर्च जर्नल

पं. दीनदयाल उपाध्याय का सामाजिक समरसता संबंधी दृष्टिकोण

आचार्य शैलेन्द्र पाराशर

हर युग में युगदृष्टा समय–समय पर दुनिया में अवतरित होते आये हैं, उनके मार्गदर्शन ने समाज में सामाजिक समरसता की स्थापना का मार्ग सदैव प्रशस्त किया है। उनमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, डॉ.बी.आर. अम्बेडकर के नाम प्रमुखता से आते हैं। स्वाधीनता के बाद भारतीय संविधान ने सामाजिक समरसता की स्थापना की भावना को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में सामाजिक समरसता के लिये समय–समय पर सामाजिक चिंतकों द्वारा अनेक सार्थक प्रयास किये गये, जिनका प्रभाव समाज में सकारात्मक रूप से परिलक्षित हुआ है। समाज में सामाजिक समरसता की स्थापना के लिये हर मनुष्य के मन में संवेदना, मानवता एवं सुख–दुःख में सहभागिता का होना आवश्यक है। सामाजिक परिवर्तन एक सतत् प्रक्रिया है। अपने हितों से ऊपर उठकर मानवता, सद्भाव, सहिष्णुता, समन्वय, सद्गुण, देशभक्ति एवं समरसता के मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता रखने वाले देदिप्यमान व्यक्तित्व ही समाज में चेतना की रोशनी फैलाने का सामर्थ्य रखते हैं। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत में अनेक विविधताओं में एकता का अद्भूत समन्वय दिखाई देता है। देश के लोकतंत्र में हर नागरिक को मौलिक अधिकार प्रदत्त किये गये हैं।

भारतीय संस्कृति के संदेशवाहक पं. दीनदयाल उपाध्याय सामाजिक समरसता के संवाहक थे। उन्होंने भारत की स्वतंत्रतापूर्व स्वातंत्र्योत्तर भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं समाज का गहनता से न केवल अध्ययन किया, अपितु भारतीय सामाजिक समस्याओं के निदान का चिंतन कर हल ढूँढ़ने के प्रयास भी किये हैं। वे देश के आम आदमी के जीवन

विकास के लिये भी सजग थे। उनकी मान्यता थी कि भारत में रहने वाले हर व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिये व्यवसाय निर्धारण की स्वतंत्रता एवं न्यूनतम वेतन मिलना चाहिये, ताकि वे अपना जीवनयापन गरिमापूर्ण ढंग से कर सके। 'भारतीय अर्थ नीति : विकास की दिशाएँ एवं राष्ट्र चिंतन' नामक पुस्तक में उनके विचारों को स्पष्टतः देखा जा सकता है। मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास के लिये नियोजन किया जाना चाहिये। जब तक मनुष्य के मन में आर्थिक क्रियाओं के लिये संलिप्तता, संकल्प एवं समर्पण की भावना नहीं होगी, तब तक आर्थिक विकास एवं समृद्धि का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा। उनके उन्नीस प्रमुख भाषणों को 'राष्ट्रचिंतन' पुस्तक में क्रमशः राष्ट्र जीवन की समस्याएँ, भारतीय राजनीति की एक मौलिक भूल, संविधान क्या करें?, राष्ट्र की तपस्या, अखण्ड भारत : साध्य और साधन, राष्ट्रीयता का पुण्य प्रवाह, स्वतंत्रता की साधना और सिद्धि, लोकमत का नियामक कौन हो?, समाजवाद, लोकतंत्र और हिन्दुत्ववाद, लोकतंत्र का भारतीयकरण, अर्थनीति का भारतीयकरण, विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था, शिक्षा, सही शब्द : सही अर्थ, चिति –1, चिति –2, राष्ट्रात्मा व विश्वात्मा, धर्मराज्य क्या और क्यों?, धर्म धारणा से। शीर्षक से संकलित किये गये हैं, इनमें उनके विचारों का दिग्दर्शन होता है। एकात्मक मानवतावाद एवं अंत्योदय के प्रणेता पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय सामाजिक समरसता की स्थापना के लिये अनेक प्रयास किये। वे एक भारतीय विचारक, इतिहासकार, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री और प्रखर पत्रकार थे। उनके व्यक्तित्व में सरलता, तीव्रबुद्धि, सहनशीलता, सौम्यता एवं नेतृत्व क्षमता सहित उनके साधारण व्यक्तित्व में अनेक गुणों का समावेश था। उनकी असाधारण प्रतिभा से अल्प समय में उनकी एक विशिष्ट पहचान बन गई थी। उन्होंने अपने जीवन को पूर्णतः सृजनात्मक, संगठनात्मक एवं एकात्मक कार्यों को करते हुये व्यतीत किया। समाज की निर्णायक इकाईयाँ मिलकर उसे सशक्त बनाती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय सच्चे राष्ट्रप्रेमी के रूप में देशवासियों को अपने वैचारिक दर्शन से प्रभावित करने में सफल रहे हैं। उनकी इच्छा थी कि भारत विश्व का मार्गदर्शन करें। उनके अन्दर देशभक्ति की भावना प्रबल थी। स्वतंत्र्योत्तर भारतीय समाज में सामाजिक समरसता की स्थापना के लिये उन्होंने न केवल गहनता से चिंतन किया, बल्कि मानवीय जीवन मूल्यों के द्वारा उसकी स्थापना कैसे हो सकती है ? इसका अपने अनुभव एवं अर्न्तप्रज्ञा से प्राप्त चिंतन द्वारा वैचारिक योगदान एवं मार्गदर्शन भी किया। उनकी यह दृष्टि उनके रचित नाटक सम्राट चन्द्रगुप्त

में परिलक्षित होती है। उनके चिंतन के विविध पक्ष जगद्गुरु शंकराचार्य, अखण्ड भारत क्यों है, राष्ट्र जीवन की समस्याएँ, राष्ट्र चिंतन और राष्ट्र जीवन की दिशा एवं अन्य लेखों में अभिव्यक्त हुये हैं। अपने बावन वर्ष के जीवनकाल में उन्होनें भारतीय समाज में समरसता की स्थापना के लिये प्रचार एवं प्रसार किया। उनका दर्शन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से ओत–प्रोत रहा है तथा उसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में सहजता से देखा जा सकता है। चालीस के दशक में वे लखनऊ से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'राष्ट्र धर्म' साप्ताहिक समाचार पत्र 'पांचजन्य' और दैनिक समाचार पत्र स्वदेश के प्रारम्भिक काल से पत्रकारिता से जुड़े रहे। उनके चिंतन की अविरल धारा निरन्तर प्रवहमान बनी रही। उनका यह कथन ''मैं, राजनीति के लिये, राजनीति में नहीं हूँ, वरन् मैं, राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूँ''को उनके सम्पूर्ण राजनीतिक जीवनकाल में देखा जा सकता है। उन्होंने व्यक्ति, व्यष्टि और समष्टि का समग्रता से अध्ययन, मनन एवं चिंतन कर 'एकात्म मानव दर्शन' का प्रतिपादन किया था। व्यष्टि व समष्टि का संस्कृति के साथ गहन सम्बन्ध होता है, किन्तु संस्कृति मूलतः सामाजिक है। संस्कृति में समाज की आत्मा का प्रकटीकरण होता है। भारतीय विचार प्रणाली समाज निरपेक्ष व्यक्ति का अस्तित्व ही सम्भव नहीं मानती हैं। व्यक्ति और समाज के हितों में तालमेल बिठाना तथा इन दोनों में परस्पर निर्माण नहीं हो एसी व्यवस्था का करना संस्कृति का कार्य होता है। मनुष्य का शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि उसकी प्रकृति के साथ कार्य करते हैं। उसके कुछ नियम होते हैं, उसी को धर्म कहते हैं। इसलिये धर्म के आधार पर संस्कृति अपना काम करती है। धर्म समाज की धारणा करता हैं, समाज का नियमबद्ध अस्तित्व धर्म के कारण ही सम्भव होता है। धर्म का पालन करने से समाज व्यवस्थित रूप से चलता रहता है। मनुष्यों के एक दूसरे के साथ व्यवहार ठीक प्रकार से चलते रहते हैं। उनके इस दर्शन में सामाजिक समरसता को भलीभाँति समझा जा सकता है। समय–समय पर उनके द्वारा दिये गये अनेक भाषणों में सामाजिक समरसता स्थापना का दर्शन परिलक्षित होता हैं। उन्होंने कहा था कि, भारत की संस्कृति ही भारत की आत्मा है। भारतीय संस्कृति के माध्यम से ही उनका अस्तित्व एवं प्रभुत्व है। भारतीयता का विकास एवं उसकी रक्षा अपनी संस्कृति को बचाकर ही की जा सकती है। मानव शरीर की तरह ही समाज के सभी अंगों का मिलजुलकर कार्य करना सभी अंगों के हित के लिये होना चाहिये, न कि स्वयं के हित के लिये। उनका मानना था कि मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान होता है।

वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण का प्रभाव तेजी से बढ़ता जा रहा है। संचारक्रांति ने मनुष्य के जीवन मूल्यों को तेजी से प्रभावित किया है। भारतीय समाज में सद्भावना, सहयोग, समन्वय, सहजता एवं सहिष्णुता की सद्भावनाएँ कम होती जा रही है। ऐसे समय में उनके सामाजिक समरसता के विचार देश एवं समाज के लिये बहुत महत्व रखते हैं। उन्होंने वर्तमान परिस्थितियों का पूर्व में ही चिंतन करते हुये लिखा था कि 'विदेशी पूँजी के साथ हमें विवश होकर विदेशों की उत्पादन प्रणाली भी स्वीकार करना पड़ती है.....' इस प्रकार की उत्पादन प्रणाली हमारे देश पर लादी गयी तो उसका जीविका निर्माण कम होगा..... परिणामतः भारत के आर्थिक हित संबंधों का रक्षण होना तो दूर, उलटे हमारा नियमित रूप से शोषण हो रहा है। इन पाश्चात्य हित संबंधियों ने भारत का आर्थिक शोषण करते समय अपने साथ भारत के कुछ वर्गों को पाश्चात्य अर्थव्यवस्थाओं के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित कर लिया है और कुछ मात्रा में उन्हें भागीदार भी बनाया है। हमारे देश के आर्थिक विकास पर इस वर्ग का बहुत ही प्रभुत्व रहा है। उनकी विकास की अवधारणा पश्चिमी अवधारणा से बिल्कुल विपरित थी। पश्चिमी लोग ज्यादा–से–ज्यादा उपभोग को सुख भोग के लिये उपयोगी और विकास का प्रतीक मानते हैं, वहीं पं. दीनदयाल उपाध्याय उपभोग या सुख को विकास का पर्याय नहीं मानते थे। सामाजिक समरसता के लिये वे मनुष्य–से–मनुष्य के बीच की दूरियों को मन से समाप्त करने के पक्षधर थे। मनुष्य यदि अपने मन निर्माण की प्रक्रिया को अच्छे से समझ लें एवं मन को निर्मल कर ले, तो उससे समाज की अनेक समस्याओं का निदान हो जायेगा। मन की स्थिति ही उसके सुख का निर्धारण करती है। वे सुखी जीवन के लिये इच्छाओं का परिसीमन और संयमन होना आवश्यक मानते थे। मानव जीवन जितना सहज, सरल और सादा होगा, उतना ही वह सुखी होगा। मन को नियंत्रित करके ही सामाजिक समरसता की समाज में स्थापना की जा सकती है। अर्थ अभाव के समान अर्थ का प्रभाव भी धर्म के लिये हानिकारक होता है। जब व्यक्ति और समाज में अर्थ साधन न होकर, साध्य बन जाये, तब वह हानिकारक होता है। अर्थसंचय के लिये व्यक्ति अनेक तरह के पाप करता है, इसी प्रकार जिस व्यक्ति के पास अधिक धन होता है, तो उसके विलासी बन जाने की अधिक संभावनाएँ रहती है। अर्थ और काम पर धर्म का नियंत्रण रखना आवश्यक है। धर्म के नियंत्रण से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। भारतीय चिंतन में व्यक्ति के शरीर, मन,

बुद्धि और आत्मा सभी का विकास करने का उददे्श्य रखा गया है। मनुष्य–से–मनुष्य के मध्य एकात्मकता की अनुभूति और मानवीय गुणों के सम्पूर्ण विकास पर ही भारत की प्रगति निर्भर है। वे मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं को विकसित करने के पक्षधर थे। उनका मानना था कि, मनुष्य अपने पुरूषार्थ से नर–से–नारायण बनने की शक्ति रखता है। मनुष्य का संस्कृति के प्रति दृष्टिकोण विस्तृत होना चाहिये। हम संस्कृति के मात्र संत्री बनकर न रह जाये, बल्कि उसके संवाहक बनें। सामाजिक समरसता की स्थापना में देश में रह रहे नागरिकों का योगदान महत्वपूर्ण होता है। समाज का निर्माण व्यक्तियों से होता है। व्यक्ति और समाज दोनों का अपना–अपना स्थान है और दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि वह एकाकार हैं। जहाँ व्यक्ति, परिवार, गाँव, प्रान्त, देश और विश्व में ही नहीं, समस्त सृष्टि के साथ एकात्मक हैं। यह वास्तव में भारतीय चिंतन का सार है। पं. दीनदयाल उपाध्याय का यह दर्शन जिसमें मनुष्य मात्र के कल्याण की कामना निहित रही है। समाज के अन्तिम आदमी को भी मुख्यधारा से जोड़ने की चिंता का भाव इसमें सन्निहित हैं। उन्होंने अपने जीवन दर्शन के अनुरूप अपने सम्पूर्ण जीवन को सहजता, सादगी एवं सरलता से व्यतीत किया। सामाजिक समरसता की स्थापना के परिपेक्ष्य में उनका चिंतन समसामयिक एवं प्रासंगिक है।

❐

पूर्वदेवा

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी की सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

'पूर्वदेवा' के प्रकाशन का उद्देश्य मुख्यतः भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त मानवीय विषमताओं के उन्मुलन, दलितों में मानवीय-अस्मिताबोध एवं अधिकार-चेतना उत्पन्न करने और तद्जनित सामाजिक परिवर्तन की भूमिका तैयार कर मानवीय मूल्यों की स्थापना के निमित्त ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर विविधपक्षीय, तथ्यपूर्ण एवं शोधपरक अध्ययन एवं चिंतन को प्रवर्त्त करना है। जिससे कि दलित, सर्वहारा वर्ग का सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में समुचित विकास एवं मानवीय सम्मान का मार्ग प्रशस्त किया जा सके और देश में राष्ट्रीय एकरूपता, सामाजिक न्याय एवं सहिष्णुता की भावना वास्तविक आकार ग्रहण कर सके।

अतएव, इस हेतु विद्वान लेखकों, अनुसंधानकर्ताओं से मौलिक लेख, शोध आलेख एवं अनुभवजन्य, तथ्यपरक लेख, पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित हैं।

* लेखको से आग्रह है कि अपने लेख सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित दोप्रतियों / **PM-5** कृति देव10 **(Kruti Dev 10)** मेंटाईप, सीडीएवंएकप्रिंटआउटसहित भेजें। **email-mpdsaujn@gmail.com**
* प्रत्येक आलेख के साथ आवश्यकतानुसार फुटनोट्स अथवा संदर्भ सूची अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
* लेख सामान्यतः हिन्दी में लिखेहों। विशेष स्थिति में अंग्रेजी भाषा में लिखे गये लेख भी स्वीकार किये जा सकेंगे
* लेख अन्यत्र प्रकाशित नहीं होना चाहिये। हाँ, यदि किसी अन्य भाषा में प्रकाशित हो चुके हों तो उनका हिन्दी में अनुवाद भी अपवाद रूप में प्रकाशनार्थ स्वीकार किया जा सकता है।
* सम्पादक मंडल कोकिसी भी लेख को प्रकाशन हेतु स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का पूर्ण अधिकार है। अतः वापसी हेतु रचना के साथ लेखक का पता लिखा लिफाफा उपयुक्त डाक टिकट के साथ संलग्न होना चाहिये।
* समीक्षार्थ नव प्रकाशित पुस्तकों की दो प्रतियाँ प्रेषित की जानी चाहिये।
* प्रत्येक पुस्तक समीक्षा लेख के साथ समीक्षित पुस्तक की एक प्रति अवश्य संलग्न की जानी चाहिये।
* पूर्वदेवा का सतत् प्रकाशन सुधी पाठकों एवं लेखकों के उदार सहयोग पर निर्भर है, अतएव विशेष अनुरोध है कि पूर्वदेवा के ग्राहक बनकर, अपना आत्मीय सहयोग प्रदान करें।

ग्राहक शुल्क की दरें (Rates of Subscription) इस प्रकार हैं-

*	आजीवन शुल्क	संस्थागत रू.2500/-	वैयक्तिक रू.2000/-
*	वार्षिक शुल्क	संस्थागत रू.350/-	वैयक्तिक रू.300/-

क्रयादेश एवं शुल्क सहित सभी प्रकार के पत्र व्यवहार का पता :

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी

बाणभट्ट मार्ग, सेंट्रल स्कूल के सामने, उज्जैन(म.प्र.)456010

म.प्र.दलित साहित्य अकादमी के लिये पी.सी बैरवा द्वारा न्यू गुलाब प्रिन्टर्स, उज्जैन-से मुद्रित एवं बाणभट्ट मार्ग, उज्जैन(म.प्र) से प्रकाशित ***आर.एन.आई.रजिस्ट्रेशन नं. 61954/95***

सम्पादन- डॉ.हरिमोहन धवन

ISSN 0974-1100